गांधीजी और उनके सपने

वियोगी हरि

सस्ता सहित्य मंडल-प्रकाशन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।
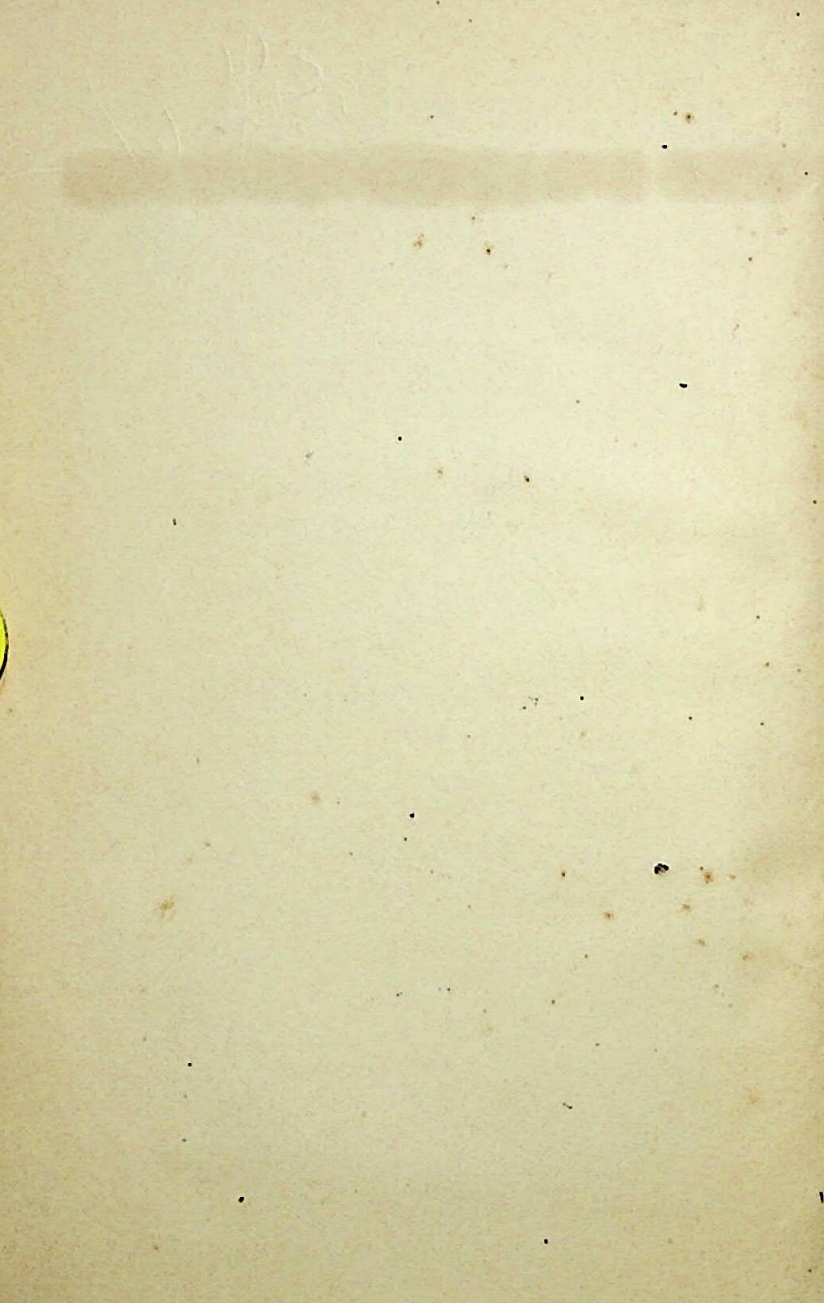
गांधीजी
और
उनके सपने

वियोगी हरि
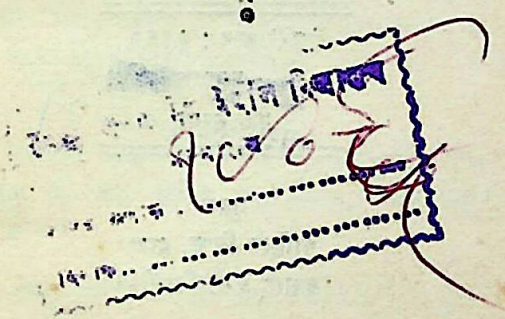
१९६९

सस्ता साहित्य मण्डल : प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

तीसरी बार : १९६९
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
साहित्य प्रिण्ट, द्वारा
सम्राट् प्रेस, दिल्ली-६

प्रकाशकीय

लोक-सेवक-मण्डल (लाजपत नगर) दिल्ली के तत्वावधान में हर साल 'गांधी-व्याख्यान-माला' का आयोजन होता है। अबतक इस माला में सर्वश्री काकासाहब कालेलकर, प्यारेलाल तथा आनन्द हिंगोरानी आदि अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये तीनों गांधी-विचार-धारा के माने हुए व्याख्याता हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका में सन् १९६५ में दिया गया व्याख्यान संगृहीत किया गया है। श्री वियोगी हरि को गांधी-परिवार तथा साहित्य-जगत का कौन व्यक्ति नहीं जानता ? उन्होंने गांधी-विचार-धारा का न सिर्फ अध्ययन किया है, बल्कि उसे अमली जामा पहनाने का भी प्रयत्न किया है।

इस व्याख्यान माला में उन्होंने गांधीजी के व्यक्तित्व पर जहां प्रकाश डाला है, वहां उनकी विचार-धारा का नम्रतापूर्वक विवेचन भी किया है।

हमें आशा है कि यह व्याख्यान सभी वर्गों और क्षेत्रों के पाठकों द्वारा पढ़ा जायगा।

—मंत्री
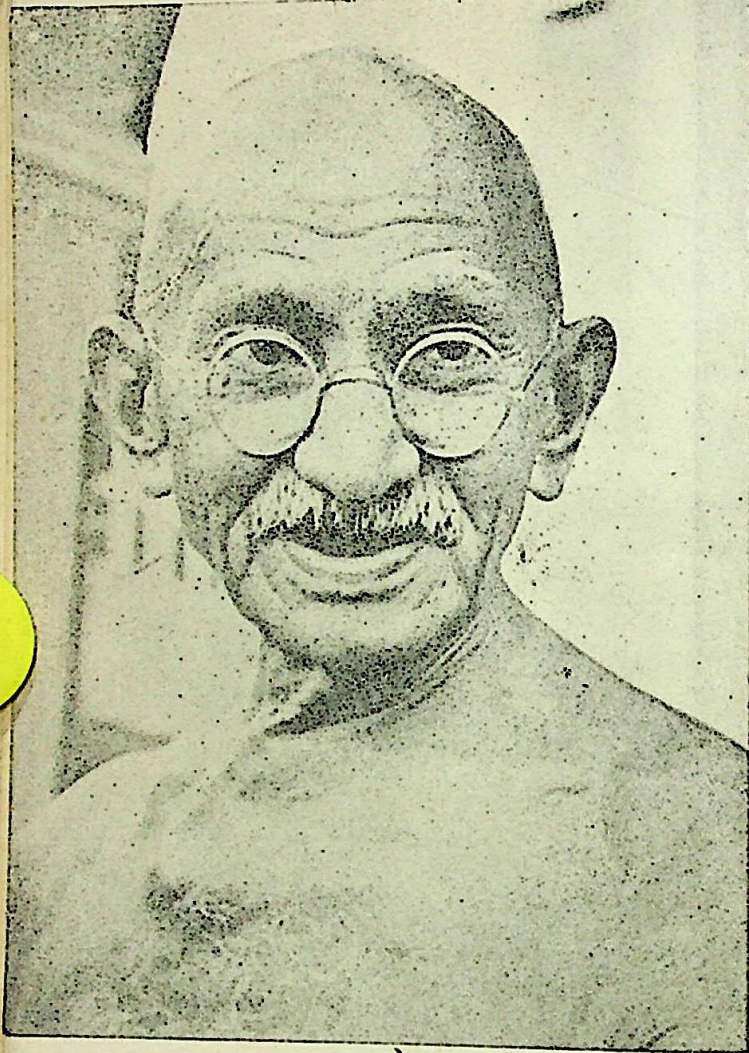
राष्ट्र-पिता

गांधीजी और उनके सपने

हमारे अपने देश में जितना कुछ गांधीजी पर कहा और लिखा गया है, उससे कहीं ज्यादा दुनिया के दूसरे हिस्सों में, काफी बारीकी और गहराई के साथ, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर, जिनके प्रयोग गांधीजी ने एक नई ही बुनियाद पर अपने जीवन में किये थे, विचार किया गया और आज भी जहां-तहां किया जा रहा है, क्योंकि दूसरा कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा है। अगर सत्य और अहिंसा को समय रहते न अपनाया गया, तो मजबूर होना पड़ेगा सारी दुनिया को मौत और जिन्दगी के बीच चुनाव करने के लिए। झूठ और फरेब से भरी राजनीति से या लोक-संहारक अस्त्र-शस्त्रों से कोई भी सवाल सुलझनेवाले नहीं, बल्कि उलझते ही जायंगे। तब गांधी का दिखाया रास्ता पकड़ना ही होगा, जान-मानकर खुशी-खुशी या फिर मजबूरी से।

क्या इसे 'गांधीवाद' कहा जाय ?

गांधी की फिलॉसफी, या गांधी के विचार ऐसे नहीं हैं कि जिनके समझने में कोई बहुत बड़ी कठिनाई पेश आये। उन विचारों को या उन बातों को राह-चलता एक अनपढ़ आदमी भी समझ सकता है, और अगर चाहे तो उनपर अमल भी कर सकता है। वहां उलझन कहां और कैसी ? हममें से हरएक यही चाहता है कि कोई दूसरा आदमी हमारे साथ असत्य का

व्यवहार-बर्ताव न करे, हमें धोखा न दे और हमें कष्ट न पहुँचाये। इसी भूमिका को लेकर गांधी ने सिखाया, बल्कि प्राचीनकाल के सच्चे, प्रेमी और नेक लोगों ने जो कहा था, उसी को दोहराया कि अगर दूसरों से सच्चा और प्रेम-भरा व्यवहार चाहते हो तो असत्य को, हिंसा को अपने दिलों से निकाल दो। पुराने ज्ञानियों ने यह भी बताया था कि सत्य का दर्शन दुर्बल मनवाला नहीं कर सकता। एक के बाद दूसरा प्रयोग खुद अपने जीवन में करके गांधीजी ने दिखा दिया कि जहां असत्य है वहां भय है, और जहां भय है वहां दुर्बलता है। सच्चा बल आत्म-बल है, जो सत्य और प्रेम से प्राप्त होता है। इन बातों को प्राचीनों ने भी कहा था और इनपर अमल भी किया था। पर बहुत करके, वह उनकी अपनी व्यक्तिगत साधना रही। गांधीजी ने गणित को फैलाकर देखा कि जो सत्य एक बूंद में है, वही समुन्दर में भी है; जो घट में है, वही ब्रह्माण्ड में भी है। तब सारे मानव-समाज पर क्यों न प्रयोग किया जाय, या उससे वैसा प्रयोग कराया जाय ? कहना चाहिए कि गांधीजी ने उन प्राचीन विचारों को प्रयोगात्मक विज्ञान का रूप दिया। सत्य और अहिंसा को हरएक पहलू से देखा और परखा, यही एक नई बात थी। नये-नये सांचे बनाने और उसमें सचाई और प्रेम की मूरतें ढालने की क्रिया को हमने 'गांधीवाद' कहा। पर अपने नाम पर चलाये जानेवाले ऐसे वाद को गांधीजी ने पसन्द नहीं किया था। इसमें खतरा देखा था। प्राचीन ज्ञानियों की ही तरह वह चाहते थे कि विचारों के सहज बहाव को, उसके साथ किसी अपूर्ण आदमी का नाम जोड़कर, 'वाद' या 'इज्म' के घेरे में बाँधा जाय। इतिहास ने बार-बार गवाही दी है कि किसी भी महापुरुष के वचनों का तेज तब मन्द पड़ जाता है, जबकि उनको किसी वाद के चौखटे में कस

दिया जाता है। लेकिन बार-बार दी गई चेतावनी को अनसुना कर दिया गया और कितने ही नये-नये वाद खड़े हो गए। गांधीजी के साथ भी वही हुआ, या होने जा रहा है। परन्तु खुद गांधीजी के सामने कभी उनके विचारों का ऐसा कोई 'वाद' नहीं था।

हमारी भक्ति-भावना

दुनिया के महापुरुषों के तईं भक्ति-भावना प्रकट करने के मोटे तौर पर सदा से दो तरीके चले आ रहे हैं। एक है उनको पूजनें का, उनका नाम जपने और जय-जयकार बोलने का, और दूसरा है उनके विचारों और कथनों को फिलॉसफी का रूप दे देनें का, उनपर वाद-विवाद करनें का और उनके नये-नये अर्थ निकालने का। एक को 'भक्ति-मार्ग' कहा जाता है, और दूसरे को 'ज्ञान-मार्ग'। असल में ये दोनों ही बहुत सही नहीं हैं। हमारे अपनें विकास में ये दोनों ही मार्ग बहुत मददगार नहीं हो सकते। ऐसी भक्ति और ऐसा ज्ञान धीरे-धीरे जड़ता का रूप लेते है।

ये जयन्तियां और ये स्मारक

किसी महापुरुष का जन्म-दिन या मरण-दिन मनाना वैसे अपने-आपमें बुरा नहीं है। उसमें से सार-तत्त्व तो तब निकल जाता है, जबकि उनके मनाने की विधि महज औपचारिक बन जाती है और उसमें जाने या अनजानें जड़ता प्रवेश कर जाती है।

अवतारों के और महापुरुषों के सुमरन और पूजन के ऐसे अनेक प्रकार और विधियाँ अपनाली गईं और उनके टिकाने का भी यत्न किया गया, जिनके सहारे वह रास्ता नहीं पकड़ा जा सका, जो उन महापुरुषों ने दिखाया था। कभी-कभी तो

उल्टा रास्ता भी पकड़ लिया गया। उनकी पत्थर और धातु की मूर्त्तियाँ खड़ी की गईं, उनके चित्र लटकाये गए, उनपर फूल चढ़ाये और झुक-झुककर माथे टेके गए। स्तोत्र रचे गए और उनका पाठ किया गया। पूजा की तरह-तरह की विधियों को लेकर लड़ना-झगड़ना भी हुआ। स्मारकों की जमीन पर कभी-कभी खून भी बहाया गया और इस तरह पुण्यात्माओं के कितने ही स्मारक कालान्तर में 'विस्मारक' बन गए। उनके नाम पर जो निधियां खड़ी की गईं वे जैसे नागपाश बन बैठीं। उनकी यादगार के अनुरूप कुछ अच्छे भी काम हुए, पर बहुत कम। अच्छे काम बहुधा उनके हाथों बन गए, जिन्होंने उन महापुरुषों के जीवन में जलनेवाली ज्योति को कुछ-कुछ पहचान लिया था। ऐसों ने तीसों ही दिन उनके जन्म-दिन और मरण-दिन मनाये, बिना किसी संगठन के और बिना किसी कार्यक्रम के। संगठन कोई बनाया भी या अपने-आप बन गया तो बुनियाद उसकी त्याग और तप की चट्टानों पर थी। सत्य, प्रेम और करुणा की सिद्धि के लिए दूसरी बुनियाद और हो ही क्या सकती है?

रंगमंच तैयार था

उन्नीसवीं सदी से ही ऐसी हवा बहने लगी थी कि जिसने हिन्दुस्तान को गहरी नींद से हल्के-हल्के जगा दिया। वह अंगड़ाई लेकर उठ बैठा। बेबसी का कांटा उसे चुभने लगा। महसूस हुआ कि वह काँटा जहरीला है, और उसे बहुत दिनों तक शरीर के अन्दर रखा नहीं जा सकता। स्वतन्त्र होने की एक खासी लड़ाई १८५७ में लड़ी गई, पर वह सफल न हुई। फिर, कुछ समय के बाद, कांग्रेस बनी और उसके द्वारा देश की आवाज कुछ-कुछ उठने लगी, जो दबी पड़ी थी। फिर, अपने-आप ऐसा संयोग आ गया कि जिसने जोर से हमें झकझोर दिया। बंग-

भंग के प्रश्न ने ऐसी आग भड़का की, जिसका दबाना संभव न रहा। कितने ही नौजवानों ने उत्तेजित होकर हिंसा का भी सहारा लिया और वे अपनी जान पर खेल गए। उनके बलिदान की चिनगारियों ने हमें स्वतन्त्र हो जाने के लिए बेचैन कर दिया। यह कहना कुछ सही नहीं कि उन्होंने गलत रास्ता पकड़ा था। भारत-माता के चरणों को अपने पवित्र रक्त से धोकर वे अमर हो गए। हमारे लिए वे कम वन्दनीय नहीं हैं।

अधीरता और व्याकुलता अब दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। कांग्रेस की नरम नीति अपना काम कर चुकी थी। अब उसकी जरूरत नहीं थी। सो, उसकी जगह पर गरम नीति ने कब्जा कर लिया और उधर विदेशी हुकूमत ने भी फौलादी पंजे से काम लेना शुरू कर दिया।

उन्हीं दिनों एक बहस चल रही थी। यह कि पहले समाजी सुधारों का काम हाथ में लिया जाय, या अंग्रेजी हुकूमत से लोहा लेने के लिए देश को तैयार किया जाय। गोखले जहां पहले काम को प्राथमिकता दे रहे थे, वहां तिलक दूसरे काम को बड़े महत्त्व का समझते थे। दोनों ही एकसमान देशभक्त थे, दोनों का ही बड़ा ऊंचा व्यक्तित्व था। यह बात नहीं कि तिलक समाज में सुधार नहीं लाना चाहते थे, मगर देश की पराधीनता उनको बुरी तरह बेचैन कर रही थी। उसी बेचैनी ने इस अमर मन्त्र को जन्म दिया कि, "स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है और उसे मैं लेकर रहूंगा।"

प्रकृति ने, या कहिये, काल ने गांधीजी के लिए पहले से ही रंगमंच तैयार कर रखा था। वह ठीक अवसर पर उस मंच पर आये। गांधीजी के हृदय में गोखले और तिलक दोनों के लिए समान आदर था। गोखले को तो गांधीजी ने अपना राज-

नैतिक गुरु भी माना था। वह बहस खत्म हो गई। समाज-सुधार और स्वतन्त्रता-प्राप्ति इन दोनों ही सवालों को एकसाथ गांधीजी ने अपने हाथ में ले लिया। एक नया ही रास्ता खोल दिया, जिसपर बेखटके हजारों ही चल सकते थे और चले भी। उस रास्ते पर हाथ पकड़कर वह ऐसों को भी ले गये, जिनको ऊपर उठाने के बल का पता भी नहीं था और जो दबे पड़े थे, पराधीनता की चट्टान को अपने ऊपर गिराकर;

या, नीचे को, अंधेरे गड्ढे में, जो फिसलते ही चले जा रहे थे दिन-पर-दिन,

उनको सहारा दिया, साहस बंधाया,

हाथ पकड़नेवाले उस महात्मा से उजेला पाकर आंख खोली उन्होंने,

और अपने भूले हुए बल को समेट लिया।

गांधीजी ने अपने चारों ओर आंख गड़ाकर देखा और सब-कुछ बड़ी बारीकी और गहराई से समझा। नब्ज की गति को उन्होंने जान लिया और इलाज शुरू कर दिया।

देखा कि झूठा डर लोगों के अन्दर पैठ गया है और अपने-आप पर उनको भरोसा नहीं रह गया है। तब उन्होंने सिखाया कि पशुबल के सामने हरगिज झुकना नहीं चाहिए और मौत से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि आत्मबल दुनिया की किसी भी ताकत से बहुत बड़ा है। यह भी कि जिसने अपने-आपको जीत लिया, उसे बड़ी-से-बड़ी ताकत भी हरा नहीं सकती। गांधी-जी ने देश के ही नहीं, सारी दुनिया के सामने एक ऐसा कार्यक्रम रखा, जिसे पूरा करके पराधीनता से हमेशा के लिए छुटकारा पाया जा सकता है। सारे ही कार्यक्रम की बुनियाद सत्य और अहिंसा पर रखने का निश्चय किया। राजनीति के लिए यह

एक नई या निराली चीज थी। राजनीति की व्याख्या यही की जाती थी और आज भी की जाती है कि उसे साधने के लिए असत्य और छल-कपट का तथा कोई भी कदम उठाना आवश्यक है। सत्य और अहिंसा पर जोर देने की बात सुनकर बड़े-बड़े भी चकराये और मखौल भी किया गया, पर बाद को वे भी कायल हो गये।

सत्य की महिमा का बखान करते गांधी कभी थका नहीं। सत्य को ही उसने परमेश्वर माना, और यह भी माना कि जो सत् है यानी जो वास्तव में 'है' वह 'न होने' में नहीं बदला जा सकता। और सत् सदा प्रेमरूप ही होता है। सत् का अर्थ 'है' और 'अच्छा' ये दोनों ही होते हैं। अपनी साधना से गांधीजी ने एक के बाद दूसरा प्रयोग करते हुए सत्य को प्रत्यक्ष देखा और दूसरों को भी दिखाने का हमेशा प्रयत्न किया। उनका विश्वास था कि सत्य तक अहिंसा के सहारे से ही पहुंचा जा सकता है। धर्म हो या कि समाज, शिक्षा हो या कि राजनीति, सभी क्षेत्रों में गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के अनेक प्रयोग किये। काफी हद तक वह सफल भी हुए। अपनी किसी भी खोज को गांधीजी ने अन्तिम नहीं माना था, क्योंकि सत्य अनन्त है। सत्य का आखिरी छोर नहीं पकड़ा जा सकता। वह मानते थे कि हम सब अपूर्ण हैं, इसलिए हमारे सारे प्रयोग और प्रयत्न भी अपूर्ण हैं। लेकिन यह अपूर्णता न तो हमें निराशा की तरफ खींचकर ले जा सकती है और न अकर्मण्यता की ही तरफ; हमारी जीवन-यात्रा का उद्देश्य क्योंकि पूर्णता को पाने का है। सत्य तो अपने-आपमें पूर्ण ही है, उसतक पहुंचने का हमारा साधन ही अपूर्ण हो सकता है। गांधीजी का विश्वास था कि अहिंसा की साधना जिस हद तक अपूर्ण रहेगी, उसी हद तक सत्य के लक्ष्य से हम दूर रहेंगे। अपने इस विश्वास में आखिरी दम तक कुछ भी

हेर-फेर करने की जरूरत उन्होंने नहीं देखी थी। उनका यह विश्वास एक ऐसी चट्टान पर खड़ा था, जिसे प्रलय भी नहीं हिला सकता। पारे की तरह हमेशा हिलने या कांपनेवाली राजनीति उनके अटल विश्वास को पकड़ नहीं सकती थी। इसीलिए वह चकित रह गई, अपने ही घर में गांधी के नये-नये प्रयोगों को देख-देखकर !

सत्याग्रह का प्रयोग

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने सत्याग्रह का जो निराला प्रयोग किया था, उसने वह रास्ता खोल दिया, जिसपर स्वयं चलकर और हजारों को चलाकर स्वतन्त्रता की एक के बाद दूसरी मंजिल तय करनी थी। तप, त्याग, सादगी और कठिन श्रम पर आधारित आश्रम-जीवन से वहीं पर सर्वोदय का मन्त्र गांधीजी को मिला और यह अनुभव में आया कि सत्याग्रह की लड़ाई उसीके खिलाफ लड़ी जा सकती है है, जिसके लिए दिल में प्रेम हो। दक्षिण अफ्रीका में सत्य और अहिंसा का जो प्रयोग किया गया था, उसीका भारत में अधिक-से-अधिक विकास हुआ। वहां से लाई हुई अधखिली कली यहां हजार पंखड़ियों में खिल गई और उसकी सुगंध दूर-दूर देशान्तरों तक पहुंची।

आश्रम की स्थापना

अहमदाबाद के कोचरब मोहल्ले में कुछ साथियों को लेकर गांधीजी बैठ गए और आश्रम-जीवन की बुनियाद वहां रख दी। राजनेताओं की दृष्टि में यह एक अनोखी चीज थी। फिर भी साथियों की संख्या धीरे-धीरे वहां बढ़ने लगी। कितने ही उधर खिच आये, जैसे चुम्बक ने खींच लिया हो। कुछ ऐसे भी, जिन्होंने पहले हिंसा का रास्ता पकड़ लिया था। कोचरब

से हटकर अब गांधीजी साबरमती के तट पर झोंपड़ियाँ डालकर जा बैठे और लोक-शक्ति को जोड़ने लगे, बुढ़ियों के हाथ का चरखा लेकर। जैसे, सपना आया कि चरखे पर काते गए सूत पर ही स्वराज्य उतरेगा। पूछा गया, तो बड़ी दृढ़ता से जवाब दिया :

"हां, चरखे से निकला हुआ यह कच्चा तार राष्ट्र के भाग्य का ताना-बाना बनेगा।"

सुनकर कवि-कल्पना ने हँस दिया,
वकील की दलील ने अनसुना कर दिया,
और राजनेता की प्रतिभा ने भी पीठ फेर ली।

मगर ग्रामजनों ने, निस्संदेह, उसकी श्रद्धा पर विश्वास किया।

सो, गांधी सूत का तार खींच-खींचकर आगे बढ़ा और बढ़ता ही गया।

बाद में कवि और वकील और राजनेता भी साथ हो लिये।

ग्यारह व्रत

सत्याग्रह-आश्रम ग्यारह व्रतों की बुनियाद पर खड़ा किया गया और उनका कड़ाई के साथ पालन करने के लिए कहा गया। उन व्रतों की व्याख्या कुछ-कुछ इस तरह की जा सकती है, कि :

सत्, जो सब जगह है, सबमें, सब तरह से व्यापक है और जिसका कहीं अन्त नहीं, वही परमेश्वर है। अन्दर की और बाहर की आंखों से उसी सत् को देखो, वाणी से उसीको प्रगटाओ और अपनी हर क्रिया में उसीको उतारो।

किसीका दिल न दुखाओ। हर किसी पर अपने अन्तर का प्रेम उंडेलते रहो और उसीमें आनन्द मनाओ।

दूसरे की वस्तु को बड़े-से-बड़ा जहर समझो। जो तुम्हारी जरूरत से अधिक हो, उसपर मत ललचाओ, उसे मन से भी न चुराओ।

सुन्दरता की उपासना करो, उसे वासना की नापाक अंगुलियों से मत छुओ। काम-वासना को जीत लो।

अनावश्यक वस्तुओं का ढेर मत लगाओ। ऐसा न हो कि कहीं वे चीजे तुम्हारे खुद के ऊपर कब्जा कर बैठें।

प्रमाद को पास न फटकने दो। श्रम को प्रतिष्ठा दो। अपने हाथों से उपार्जन करो, बुद्धि को खरीद-फरोख्त की चीज न बनाओ।

जीभ के गुलाम न बनो। उतना ही उसे दो, जो उसके हित में हो और जो मित हो।

न किसीसे डरो, न दूसरों को डराओ। सत्य में भय कैसा?

हर धर्म का आदर करो। जो घट-घट में रम रहा है, वही तो हर धर्म में रमा हुआ है।

इन्सान को मशीन की तुलना में ऊंचा समझो और उसे अनमोल मानो। दूसरों का शोषण न करनेवाला श्रम जिस वस्तु को उपजाये, उसीको अपने काम में लो, परमेश्वर का प्रसाद समझकर।

आत्म-भावना से सबके अन्तर का स्पर्श करो। अपनी करुणा का पात्र हर किसीको बनालो, क्योंकि कोई भी पराया नहीं है।

यही जीवन के व्रत हैं। मगर याद रहे कि इन व्रतों को छूकर तुम्हारा अहंकार तुम्हें कहीं अपवित्र न कर दे। सत्य और अहिंसा की साधना नम्रतापूर्वक हो।

ये ग्यारह व्रत विनोबा के रचे इन दो श्लोकों में आ जाते हैं—

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह,
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन।
सर्वधर्म, समानत्व, स्वदेशी, स्पर्श-भावना,
विनम्र व्रत-निष्ठा से ये एकादश सेव्य हैं।

आश्रम यह हूबहू प्राचीन आश्रमों के जैसा नहीं था। वहां की जीवन-साधना का उद्देश्य था लोक-कल्याण, सबका उदय और सबका भला। देश की पराधीनता सबसे बड़ी रुकावट थी इस लक्ष तक पहुंचने में देश को स्वाधीन करना था और कांग्रेस के ही जरिये। लेकिन कांग्रेस का पुराना रूप पलटना जरूरी था, जिससे कि वह सच्चे अर्थों में आम जनता की नुमाइन्दगी कर सके। जनता अपनी ही भाषा में, न कि अंग्रेजी में आवाज उठा सकती थी। इस सचाई को गांधीजी ने अच्छी तरह समझ लिया कि बिना जनभाषा के कोई भी जन-आन्दोलन नहीं चलाया जा सकता। हिन्दी को, जिसे बाद में 'हिन्दुस्तानी' का नाम दिया गया, गांधीजी ने राष्ट्रभाषा माना। भारत की दूसरी सभी भाषाओं को भी अपना-अपना विकास करने के लिए इस बात से उत्साह मिला। कांग्रेस इससे आम जनता की कांग्रेस बन गई और गांव-गांव में उसका संदेश पहुंचा।

चारसूत्री कार्यक्रम

भारत को स्वतंत्र करने के लिए अब गांधीजी ने एक रचनात्मक प्रोग्राम रखा, बिल्कुल निराला। यह कि खादी पहनो, छुआछूत को दूर करो, कौमी एकता को मजबूत करो और शराब व नशे की दूसरी चीजों को छोड़ दो। अपने पैरों पर खड़े होने, किसीके साथ भेद-भाव न बरतने, हरएक धर्म—

मजहब को आदर और प्रेम से देखने और अपने-आपको काबू में रखने का यह कार्यक्रम ऐसा था, जिसे पूरा करके स्वराज की लड़ाई लड़नी थी। बुद्धिजीवियों ने पहले तो इस कार्यक्रम को मन से स्वीकार नहीं किया, पर आम जनता ने इसके अन्दर भरी हुई शक्ति को पहचान लिया और इसपर खासा अमल भी किया।

कार्यक्रम यह ऐसा था, जिसे स्वराज हासिल होने के बाद भी छोड़ा नहीं जा सकता था, क्योंकि इसके अन्दर वे सारी ही बुनियादी बातें हैं, जिनसे हमारा जीवन ऊंचा उठता है, और निर्मल बनता है। खादी गांधीजी की दृष्टि में महज कपड़ा नहीं था, बल्कि उसमें एक ऐसी भावना भरी हुई है, जो दूसरों का शोषण रोकती है, जो किसीके भी परिश्रम का नाजायज फायदा नहीं उठाने देती और साथ ही, जो सिखाती है कि दूसरों के लिए जीने में ही जीवन की सार्थकता और पवित्रता है। चरखे और खादी ने उन दिनों हजारों के जीवन को पलट दिया था। उसपर एक निराला ही रंग चढ़ा दिया था। जो कई बड़े लोग खादी की बात सुनकर पहले हँसते थे, वे बाद में कायल हो गये, उसमें भरी हुई अपार शक्ति को देखकर।

छुआछूत की बुराई, हालांकि, हिन्दू-समाज में पाई जाती है, फिर भी आजादी की लड़ाई के तामीरी प्रोग्राम में अस्पृश्यता-निवारण को शामिल किया गया। गांधीजी का यह पक्का विश्वास था कि हिन्दू-धर्म असल में मानव-धर्म है, क्योंकि वह सत्य और प्रेम की बुनियाद पर खड़ा हुआ है। छुआछूत असत्य का दूसरा नाम है। गांधीजी को अपने बचपन से ही छुआछूत का कांटा चुभने लगा था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अगर छुआछूत रहेगी, तो हिन्दू-धर्म रहनेवाला नहीं और इस पाप के रहते देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता। मतभेद हो सकता है,

पर हम मानते हैं कि अस्पृश्यता को जड़मूल से मिटाने का काम गांधीजी के जीवन का सबसे बड़ा काम था, देश को आजाद कराने से भी बड़ा काम। मनुष्य को उसकी सही जगह पर बैठाने, इन्सानियत को जगाने और झूठी ऊंचाई के विचार से हुए अंधों की आंखें खोलने और उस पाप को उनसे धुलवाने का जो काम गांधीजी ने किया, वह सचमुच अनूठा और बेजोड़ है।

१९३२ के सितम्बर में अछूतों के सवाल को लेकर यरवडा-जेल के अन्दर गांधीजी ने जो ऐतिहासिक उपवास किया था, वह एक बहुत बड़ी क्रान्ति का कदम था। उस क्रान्ति से ऐसी प्रचण्ड ज्वाला उठी कि ब्रिटिश प्रधान मन्त्री रेम्जे मेकडॉनल्ड को अपना वह फैसला रद्द कर देना पड़ा, जिसने हिन्दू-समाज में से अछूतों को काटकर अलग कर दिया था। सवर्ण हिन्दुओं को अपना किया हुआ पाप साफ दीखने लगा और वह प्राय-श्चित्त करने को तैयार हो गये। उन्हीं दिनों गुजरात के एक अछूत भाई के ही सुझाने पर गांधीजी ने अछूतों को 'हरिजन' यह नया नाम दिया। हरिजनों की सेवा को गांधीजी ने अपने जीवन का सबसे बड़ा पवित्र कार्य और धर्म माना, धर्म-भावना से ही उसे किया और दूसरों से कराया। सवर्ण-समाज की आंखें खुल गईं, वह जागा और हरिजन भी जागे। मानवता के दो टुकड़े, जो अलहदा जा पड़े थे, प्रेम की लेई से जुड़ने लगे। ऐसा महान् चमत्कार था यह !

धर्म—मजहब के नाम पर अलग टुकड़ों में बँटे हुए दिलों को जोड़ने का जतन भी प्राणों की बाजी लगाकर गांधीजी ने किया। सामने यह स्पष्ट था कि धर्म या मजहब अपने पड़ोसियों के साथ बैर रखना नहीं सिखाता, उसकी बुनियाद तो प्रेम और एकता है। पराधीनता के दिनों में अलग-अलग

फिरकों की एकता जितनी जरूरी है, उतनी ही जरूरी वह स्वराज के दिनों में भी है। इस सचाई को गांधीजी ने तभी अनुभव कर लिया था और अंत में तो एकता के मन्दिर पर अपने खुद के बलिदान का कलश चढ़ा दिया। अपनी अनूठी मिसाल से साबित कर दिया कि प्रेम तो सिर का सौदा है, इसलिए सत्य का व्यापारी ही इस बाजार में पैर रख सकता है। आखरी दम तक हमें यही सिखाया कि अलग-अलग धर्म-मजहब तो रंग-रंग के चोले हैं, उनकी तरफ न खिचकर हमें तो उनके अन्दर समाया हुआ परमात्मा का प्रकाश ही देखना चाहिए।

गांधीजी ने देखा कि शराब और दूसरी नशीली वस्तुओं के रहते स्वतंत्रता की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती; साथ ही, स्वराज कायम नहीं रखा जा सकता। शराब से होनेवाली आय से जनता का भला कभी हो नहीं सकता। गांधीजी के सामने यह बिल्कुल साफ था कि शराब से और नशे की दूसरी चीजों से अगर जनता का पिण्ड न छुड़ाया गया, तो वह होश में नहीं रहेगी, बुरे-से-बुरे गुनाह करेगी और दरिद्रता और सर्वनाश को हमेशा दावत देती रहेगी। सच्चे अर्थों में वह स्वाधीन रह नहीं सकती। इसलिए स्वराज की लड़ाई में नशाबन्दी को बहुत बड़ा महत्त्व दिया गया। शराब की दूकानों पर पिकेटिंग कराई गई। धरना दिया नौजवान लड़कियों ने उन दूकानों पर, जिनपर गुण्डे तैनात थे। बहिनों के तेज के सामने उनकी गरदनें झुक गईं और कितनी ही दूकानें बन्द हो गईं। हजारों-लाखों ने खुशी-खुशी दारू पीना छोड़ दिया। यह भी एक बड़ा चमत्कार हुआ।

कार्यक्रम के ये चारों ही अंग ऐसे थे, जिनको स्वाधीन भारत में भी छोड़ा नहीं जा सकता :

खादी और ग्रामोद्योग हमें सिखाते हैं अपने पैरों पर खड़े

रहकर श्रम की पूजा करना।

छुआछूत को जड़ से उखाड़ फेंकने का मतलब है दिल को पवित्र बनाना और अपने-आपको सही तौर पर पहचानना।

अगर एक-दूसरे के धर्म—मजहब का आदर न किया गया और हम नाहक आपस में नफरत और वैर मोल लेते रहे, तो इन्सानियत खत्म हो जायगी और हैवान बनकर हम स्वराज और संस्कृति को टिका नहीं सकेंगे।

अगर हमने अपना होश गंवा दिया, मन और बुद्धि पर अगर हम काबू न पा सके, तो एक-एक घर नरक बन जायगा; शराब से होनेंवाली आमदनी अच्छे-से-अच्छे राज्य को भी किसी दिन खोखला बनाकर बर्बाद कर देगी।

तब क्या स्वतन्त्रता प्राप्त करने के ये चारों साधन ऐसे थे कि जिनको छोड़ा जा सकता है? इनको छोड़ देने का मतलब है, दूसरों के परिश्रम का शोषण करना, अधर्म और पाप को छाती से लगाना, दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुंचाना और उनको दुश्मन समझना और अक्ल को ठुकराकर तरह-तरह की आफतों को अपने घरों में बसा लेना।

कांग्रेस ने इस चारसूत्री कार्यक्रम को स्वीकार तो कर लिया, मगर बतौर एक कामचलाऊ नीति के; उसी तरह जैसे किसी नदी को पार करने के लिए कुछ बांसों को रस्सियों से बांधकर उनका छोटा-सा बेड़ा बना लिया जाय और पार होने के बाद उसको वहीं छोड़ या फेंक दिया जाय। लेकिन गांधीजी के लिए यह कार्यक्रम महज एक राजनैतिक साधन नहीं था। इन्सानियत को जगानें, दिल और दिमाग को उदार व ऊंचा बनानें का यह बहुत बड़ा साधन था।

असहयोग और सत्याग्रह

गांधीजी की अनोखी रहनुमाई में इस कार्यक्रम को, नीति के बतौर ही सही, अपनाकर कांग्रेस आगे बढ़ी। जनता के अन्दर उमंग की लहर दौड़ गई। उसमें जोश उमड़ पड़ा। वह निडर हो गई, जुल्म का हर तरह से सामना करने के लिए। उसने असहयोग कर दिया, उन तमाम बातों के साथ, जिन्होंने उसकी स्वतंत्रता को और मनुष्यता को भी बुरी तरह दबा रखा था, बल्कि कुचल दिया था। अदालतों पर से उसका विश्वास उठ गया था। उनसे न्याय पाने का भरोसा नहीं रह गया था। स्कूलों-कालेजों का भी बहिष्कार किया गया। विद्यार्थी बाहर निकल आये, यह देखकर कि वह शिक्षा किस काम की, जो देश को गुलामी से छुड़ाने में रुकावट पैदा करे। कितनों ने सरकारी नौकरियां भी छोड़ दीं। यह साफ हो गया कि बुराई और पाप के साथ किसी भी कीमत पर सहयोग नहीं किया जा सकता।

सारे देश में एक नया ही वातावरण बन गया। गुलामी के बंधन को तोड़ने और जुल्म से जूझने के लिए हजारों और लाखों तैयार हो गये। विदेशी हुकूमत के कान यह सब देखकर खड़े हो गये। उसे इस आन्दोलन में भी हिंसात्मक विद्रोह की बू आने लागी। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या कोई अहिंसात्मक लड़ाई भी लड़ी जा सकती है? अपनी आदत के अनुसार उसने दमन-चक्र चलाना शुरू कर दिया। मगर वह हैरान थी देख-देखकर कि हजारों ही दीवाने आजादी के गीत गाते हुए बड़ी मस्ती से जेलों में जा रहे हैं, और सख्त-से-सख्त सजा को भी हंस-हँसकर काट रहे हैं। हुकूमत की समझ में आ नहीं रहा था कि गांधी ने यह कैसी जादू की लकड़ी घुमा दी है!

जलियांवाला बाग के राक्षसी हत्याकाण्ड की याद ताजा थी। उसे भुलाया नहीं जा सकता था। उसने यह विश्वास पक्का कर दिया था कि विदेशी हुकूमत का डाला हुआ गुलामी का फन्दा काटना ही होगा।

असहयोग की हवा देश के कोने-कोने में जा पहुंची। लेकिन यह तो पहला कदम था। दूसरा कदम जो उठाना था, वह सत्याग्रह का था। उसके लिए बहुत बड़ी पूर्व-तैयारी की जरूरत थी। सत्याग्रह कोई ऐसा-वैसा हथियार नहीं है, जिसे हर कोई चला सके। इसे चलाने की कला को तो एक गांधीजी ही जानते थे। रहस्य यह था कि सत्याग्रह जिसके खिलाफ किया जाय, उसके लिए दिल में प्रेम और करुणा का भाव होना चाहिए। यह बात साफ होनी चाहिए कि अन्त हमें बुराई का करना है, न कि बुराई करनेवाले का। परन्तु पापी और पाप के बीच में भेद करना हर किसीके बस की बात नहीं है।

गांधीजी ने सत्याग्रह का प्रयोग एक बड़े पैमाने पर करने का निश्चय किया। यह जाहिर था कि रचनात्मक कार्यक्रम जहां-तक सफल होगा, वहीं तक सत्याग्रह की लड़ाई सफलता के साथ लड़ी जा सकती है। कई मोरचों पर वह लड़ी भी गई। लेकिन एक मोरचे पर हिंसा भड़क ही उठी, दुर्भाग्य से चौरी-चौरा में। गांधीजी ने हुक्म दिया पीछे कदम हटा लेने का। उन्हें लगा कि हिमालय–जैसी यह बहुत बड़ी भूल हुई। सत्याग्रह तो अहिंसा की पुख्ता बुनियाद पर ही खड़ा हो सकता है। पैर पीछे हटा लेने की यह बात लोगों के गले नहीं उतरी। कई साथियों और सैनिकों ने गांधीजी को बुरा-भला भी कहा कि भले ही यह महात्मा हो, पर देश की बागडोर को यह शख्स संभाल नहीं सकता। बारडोली का भी सत्याग्रह इसी तरह गांधीजी ने स्थगित करवा दिया था।

अहिंसा की लड़ाई में सेना जो भी भूल करती है, उसे सेनापति अपनी ही भूल मानता है। गांधीजी के मन में विचार-मंथन चलता रहा कि जनता को अहिंसात्मक लड़ाई लड़ने के लिए कैसे तैयार किया जाय। अन्त में रचनात्मक कार्यक्रम को और भी मजबूत बनाने और उसे दृढ़ता के साथ चलाने के परिणाम पर ही गांधीजी पहुंचे। धीरे-धीरे जो ताकत जहां-तहां बिखर गई थी, वहां वह फिर इकट्ठा होने लगी। गांधीजी की युद्ध-कला को स्वतन्त्रता के सैनिकों ने नजदीक से पहचाना। निराशा के बादल हटने लगे। साथ ही, हुकूमत ने अपना जाल फैलाना शुरू कर दिया कि किसी तरह फूट पड़ जाय। लालच दिखाया गया, किश्तों से बहुत-कुछ देने का, अगर प्रजा वफादार बनी रहे। जाल में हम कुछ फंस भी गये। 'साइमन कमीशन' इसीलिए यहाँ भेजा गया और उससे जो फल निकला वह घातक ही साबित हुआ। लाला लाजपतराय के बलिदान का कारण वही बना। उनपर किया गया लाठी का एक-एक प्रहार अंग्रेजी हुकूमत के कफन के लिए एक-एक कील साबित हुआ।

गांधीजी जो भी कदम उठाते, लोग उसके अन्दर भरा हुआ गहरा अर्थ शुरू में समझ नहीं पाते थे। अजीब-सा लगता था उठाया गया हरएक नया कदम। फिर भी गांधीजी की नेतागिरी में विश्वास था कि वह चमत्कार ही कर दिखायेंगे। नमक-कानून तोड़ने की सलाह जब गांधीजी ने दी, तब श्रद्धा रखने-वाले साथी दाण्डी-यात्रा में बड़े उत्साह से उनके साथ हो लिये। सत्याग्रही-दल के साथ लम्बी पैदल यात्रा करके ज्योंही गांधीजी ने समुद्र के निषिद्ध तट पर से एक मुट्ठी नमक उठाया कि नमक-कर का कानून भंग हो गया। फिर तो देश में जगह-जगह नमक बनाया गया। बच्चों के लिए तो वह एक खेल हो गया।

लेकिन सरकार के लिए यह उसकी इज्जत का सवाल था। कानून का तोड़ा जाना उसे बरदाश्त नहीं हुआ। गांधीजी को और हजारों ही सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर लिया गया। सख्त सजाएं दी गईं। जेल भर गए। तब कहीं समझ में आया कि नमक-कानून तोड़ने के अन्दर अहिंसात्मक क्रांति किस खूबी से छिपी हुई थी, जो गांधीजी के एक इशारे से प्रगट हो गई।

गोलमेज-कान्फ्रेंस में

उधर लंदन में गोलमेज कान्फ्रेंस का स्वांग रचकर सब्ज-बाग दिखलाया जा रहा था। पहली में तो नहीं, पर कई साथियों की सलाह से दूसरी कान्फ्रेंस में लंदन जाकर गांधीजी नें भारत के प्रतिनिधि के रूप में हिस्सा लिया, और जैसाकि स्पष्ट था, वहां कुछ मिला-मिलाया नहीं। खाली हाथ लौटना पड़ा। लेकिन खाली हाथ एक दूसरे अर्थ में नहीं, जो छिपा हुआ था। इस कान्फ्रेंस में ही गांधीजी नें प्रतिज्ञा की थी, "अगर अछूतों को हिन्दू-समाज में से अलग कर दिया गया, तो मैं अपने प्राणों की बाजी लगा दूंगा।"

इंग्लैण्ड से लौटते ही आन्दोलन ने फिर जोर पकड़ा, कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर देने पर। फिर गिरफ्तारियां और सजाएं। इसी दरमियान साम्प्रदायिक फैसले के विरोध में गांधीजी नें आमरण उपवास किया। फलतः साम्प्रदायिक फैसले में से ब्रिटिश प्रधानमन्त्री नें वह हिस्सा निकाल दिया, जिसमें अछूतों को अलहदा चुनाव के तरीके से हिन्दू-समाज में से अलग कर दिया गया था।

इसके बाद कई घटनाएं एक के बाद दूसरी घटीं। साबर-मती का सत्याग्रह-आश्रम हमेशा के लिए गांधीजी ने त्याग दिया, और तबसे वह हरिजन-आश्रम बन गया। वर्धा में और

उसके बाद सेवाग्राम में गांधीजी ने अपनी कुटिया बना ली और वहीं से उनके प्रकाश की किरणें फूटने और फैलने लगीं।

ऐतिहासिक हरिजन-यात्रा वर्धा से ही शुरू हुई थी, जिसने छूआछूत को करारा धक्का दिया। वर्धा में ही ग्रामोद्योग-संघ की स्थापना हुई और दो साल बाद बुनियादी तालीम का सूत्र-पात भी वहीं से हुआ। गांधीजी की दृष्टि में ये दोनों ही रचनात्मक काम कम क्रांतिकारी नहीं थे।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

स्वतन्त्रता की हरएक लड़ाई में से गांधीजी ने कुछ-न-कुछ सार निकाला, जिससे इस नतीजे पर पहुंचना स्वाभाविक था कि जिस हद तक सत्य और अहिंसा का पालन होगा, वहीं तक उसमें सफलता मिलेगी। इसी चिन्तन में से व्यक्तिगत सत्याग्रह निकला। यह कि सत्याग्रह वही करे, जिसने सत्य और अहिंसा की साधना अपने जीवन में की हो। प्रथम सत्याग्रही गांधीजी ने विनोबा को चुना। विनोबा के जोड़ का ऐसा सत्याग्रही और कौन मिल सकता था? व्यक्तिगत सत्याग्रह भी सैकड़ों-हजारों ने किया। सरकार ने हमेशा की ही तरह फिर अपना दमन-चक्र चलाया। सामूहिक और व्यक्तिगत सत्याग्रह में उसने कोई फ़र्क नहीं किया।

आख़िरी मोरचा

आज़ादी की लड़ाई का आख़िरी मोरचा तो अभी बाकी था। १९४२ की अगस्त को गांधीजी ने कांग्रेस से 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास करा लिया। देश के तमाम बड़े-बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। पूना में आग़ा खां-महल में गांधीजी को रखा गया। यहींपर उनकी जीवन-संगिनी कस्तूरबा का विछोह हुआ और इससे पहले छाया की तरह सदा साथ

रहनेवाले महादेवभाई का भी देहोत्सर्ग यहीं पर हुआ।

फिर गांधीजी और दूसरे नेताओं की जेल से रिहाई और शिमला कान्फ्रेन्स, उसके बाद भारत में कैबिनेट-मिशन का आना और उसका नाकामयाब होना।

जहां-तहां सांप्रदायिक दंगे हुए, १९४६ में। कहीं-कहीं पर तो बड़ी प्रचण्ड आग भड़क उठी। कलकत्ता में उस आग को गांधीजी ने बुझाया, जिसे बड़ी-से-बड़ी सेना भी नहीं बुझा सकती थी। नोआखाली में पैदल-यात्रा की। वहां उत्तेजना और हिंसा का सामना किया, और हज़ारों अत्याचार-पीड़ितों को साहस बंधाया।

भारत स्वतन्त्र तो हुआ पर···

१९४७ की १५ अगस्त को भारत स्वतन्त्र हो गया। उत्सव और आनन्द मनाने का दिन था वह, लेकिन गांधीजी के लिए नहीं। वह तो दिल्ली से बहुत दूर हिन्दुओं और मुसलमानों के फटे हुए दिलों को सीने और जोड़ने में लगे हुए थे।

भारत का दो टुकड़ों में बंट जाना गांधीजी से सहा नहीं गया। लगा, जैसे छाती पर चिता जल रही है। लाखों ही अपने घर-बार छोड़-छोड़कर भाग रहे थे। बेक़सूरों के खून के पनाले बह रहे थे। हैवान बन गया था इन्सान, जबकि गांधी इन्सान को इन्सान के ही रूप में देखना चाहता था और वह बुरी तरह तड़प रहा था।

आसमान से तभी एक आवाज़ आई और राजघाट पर फूल बरस पड़े :

कैसी अजीब बात !

वे दोनों भाई अपने-अपने धर्म की रक्षा करने चले थे।

पर क्या सचमुच में वह धर्म था ?

उन्होंने तो हिंसा और प्रतिहिंसा का भयानक दामन पकड़ लिया था।

मानव से वे दोनों देवता बनने जा रहे थे और बन बैठे खूंखार पशु !

दोनों ने दोनों का रक्त पान किया,
और नारी का लज्जाजनक अपमान भी,
दोनों के घर धांय-धांय जल उठे।
उस अग्नि-काण्ड को उस महात्मा ने बुझाना चाहा,
सैकड़ों ही घड़े पानी डाला उसनें,
पर वह बुझी नहीं, और—और भड़कती ही गई।
दोनों ने एक-दूसरे के कलेजे को चीर-फाड़ डाला था।
मानवता जब किसी भी तरह न जागी,
तब अन्त में उस परमदयालु ने
भाई-भाई के फटे-फटे दिलों को अपने रक्त की लेई से जोड़ दिया।
और हिंसा और प्रतिहिंसा ने दोनों का साथ छोड़ दिया।
अब वे हैवान नहीं, इन्सान थे।

हम सबको सबकुछ दे और दिलाकर वह महात्मा महा-यात्रा पर चला गया, जहां से फिर लौटना नहीं था। छाती में तीन गोलियां और मुख में राम का नाम लेकर सिधार गया वह प्रार्थना-भूमि पर से ही।

असली काम जो पूरा नहीं हुआ था

मैं गांधीजी की रामकहानी को सिलसिलेवार नहीं कह रहा हूं। इधर-उधर कुछ बिखरी हुई घटनाओं को ही यहां लिया है। पूरी तस्वीर कहां सामनें आई है? बहुत करके हमने यही जाना और यही समझा है कि गांधीजी भी एक राजनेता थे

और वह हिन्दुस्तान को आजाद करानें के लिए सारी जिन्दगी एक के बाद दूसरी लड़ाई लड़ते रहे। और अक्सर मतभेद रहा कि वह सफल राजनेता थे या कि असफल। कहा जाता है कि जिसे राजनीति माना गया है, उसके पैमाने पर गांधीजी बहुत सही नहीं उतरे थे। फिर भी अच्छे-अच्छे राजनेताओं ने उनको अपना नेता माना, और वे उनके पीछे-पीछे चलते रहे। आम-जनता ने उनको महात्मा के रूप में पहचाना था, मगर चन्द लोगों की राय में गांधी कोई महात्मा नहीं था। उनका कहना था कि गाय के एक बछड़े को—भले ही वह प्राणान्तक कष्ट से छटपटा रहा था, मरवा देना किसी महात्मा का काम नहीं हो सकता। अछूतों को देव-मन्दिरों में ले जानेवाला और उनके साथ खाने-पीनेवाला व्यक्ति क्या महात्मा हो सकता है? ऐसे-ऐसे छुटपुट मतभेदों और टीका-टिप्पणियों से दुनिया का कोई भी महापुरुष बचा नहीं है। फिर गांधीजी नें खुद अपने-आपको न तो कभी राजनेता माना था और न महात्मा ही। उनका सारा जीवन तो सत्य के प्रयोगों से भरा हुआ था। जरूरी नहीं कि हरएक प्रयोग तत्काल सफल ही हो। वह आज नहीं तो कभी आगे चलकर सफल हो सकता है। गांधीजी की कोशिश थी कि राजनीति को धर्म के रास्ते पर चलाया जाय। यह सपना पूरा नहीं हो सका, ऐसा माना जा सकता है। पर इस या ऐसी ही दूसरी बातों से गांधीजी के युग-पुरुष और विश्व-मानव होनें में कोई फर्क नहीं पड़ा।

गांधीजी जिस लम्बी यात्रा पर चल रहे थे, उसका अन्त भारत के स्वतन्त्र हो जाने की मंजिल पर होनेवाला नहीं था। वह आखिरी मंजिल नहीं थी। सत्य और अहिंसा के कितने ही प्रयोग बाकी थे, जो न हो पाए। विदेशी नीति में, खास करके आक्रमण या युद्ध-काल में अहिंसा कहां तक काम दे सकती है

इसका कोई मौका नहीं आया था। पर इससे यह मतलब नहीं निकाला जा सकता कि अहिंसा का प्रयोग ऐसे मौकों पर हमेशा असफल ही रहेगा। गांधीजी अपने सत्य के प्रयोगों का जो सूत्र छोड़ गये हैं, उसे पकड़कर आगे बढ़ा जा सकता है, और फिर भी किसी ऐसे नतीजे पर नहीं पहुंचा जा सकता कि जिसे आखिरी कहा जाय। इस बहस को एक तरफ रखकर अब मैं कुछ ऐसी बातों पर रोशनी डालना चाहता हूं कि जिन्होंने गांधीजी को महात्मा बनाया और हमारा बापू भी। वे ऐसी बातें हैं, जो प्रायः छोटी या मामूली मानी जाती हैं, उनपर राजनीति का तो कभी ध्यान भी नहीं जाता।

हम यह न भूलें कि गांधीजी उसी मिट्टी का बना पुतला था, जिस मिट्टी के हम सभी बने हुए हैं। गांधीजी में भी वे ही सब अपूर्णताएं और कमजोरियां थीं जो हममें हैं। पर गांधीजी के पास अपनी एक दृष्टि थी, उनको बारीकी से देखनें-परखने की। दूसरों में भी वह दृष्टि होती है। पर वह छिपी पड़ी रहती है, और उससे काम नहीं लिया जाता। गांधीजी की 'आत्मकथा' में ऐसे कितने ही छोटें-छोटें प्रसंग आये हैं, जिन्होंने मदद दी अपनें-आपको पहचानने में और गिरते-पड़ते भी ऊपर उठनें और चढ़नें में।

बचपन में गांधीजी नें 'हरिश्चन्द्र' और 'श्रवणकुमार' ये नाटक देखे थे। सत्य का पहला पाठ वहीं पढ़ा था। हम लोग भी कितनें ही ऐसे नाटक और घटनाएं देखते रहते हैं, और ऐसी किताबें भी पढ़ते हैं, पर उनका वह असर नहीं पड़ता जो हमारे जीवन को पवित्र और ऊंचा बना दे। तब यही कहा जायगा कि देखने-देखनें में फर्क होता है। गांधीजी नें अन्तर की दृष्टि को खोल रखा था, और हम उसे बन्द किये बैठे हैं।

बचपन में यह भी पाठ गांधीजी ने सीख लिया था कि राम का नाम लिया और डर कभी का भाग गया। रामनाम को ऐसा पकड़ा कि आखिरी सांस तक वह छूटा नहीं। गांधीजी ने फिलॉसफी या शास्त्रों की बड़ी-बड़ी पोथियाँ नहीं पढ़ी थीं। पर चार-छः शब्द भी जो सुन या पढ़ लिये थे, उनकी गहराई में उतरने का हमेशा यत्न किया और उनसे वह सार-तत्त्व खींच लिया, जिससे कि मनुष्य सच्चा मनुष्य बन सकता है। अपने व्याख्यानों में संस्कृत या अंग्रेजी के प्रमाण कब गांधीजी देते थे? पर कभी कोई प्रमाण दिया भी तो बस तुलसीदास का, इतना ही कि 'दया धर्म का मूल है, पाप-मूल अभिमान'।

अछूतपन बचपन से ही गांधीजी को चुभने लगा था। जीवन में पड़ा हुआ तबका वह छोटा-सा बीज आगे चलकर वट-वृक्ष बन गया। बड़ी छोटी बात थी बचपन की वह, पर उसने सामाजिक क्रान्ति का बड़े-से-बड़ा काम कर दिखाया। "पुनर्जन्म मैं नहीं चाहता, पर अगर मेरा फिर से जन्म हो, तो मैं किसी भंगी के घर में जन्म लेना चाहूंगा।" गांधीजी की यह मनोकामना हम सबको बड़ी प्रेरणा दे सकती है। पत्नी कस्तूरबा और कुटुम्बीजनों और आश्रम के साथियों के साथ के कितने ही ऐसे छोटे-छोटे प्रसंग हैं, जिनसे गांधीजी संघर्ष और समन्वय करते हुए उस बड़ाई और ऊंचाई तक पहुंचे थे, जहां हजारों बरसों के बाद कोई बिरला ही पहुंचता है।

उपवास और तप का पाठ भी

इसी प्रकार गांधीजी ने अपनी मां पुतली बा से बचपन में ही सीख लिया था कि सत्य और अहिंसा तक पहुंचा जा सकता है, तो आत्मा को शुद्ध करनेवाले तप के द्वारा ही। इस बात को गांधीजी ने अन्त तक सुरक्षित रखा और पूरी सचाई के साथ

इसे निबाहा भी। तप पर गांधीजी की अटल श्रद्धा थी। एक कार्यकर्त्ता को १९३४ में लिखा था :

"मेरे लिए तो अस्पृश्यता-निवारण एक ऐसा धर्म है, जिसका पालन तप से ही किया जा सकता है। किसी भी धर्म की अशुद्धि, बिना आत्मशुद्धि के, दूर नहीं हो सकती। अछूतपन हिन्दू-धर्म की सबसे बड़ी अशुद्धि है। उसे दूर करने के लिए हजारों सवर्ण हिन्दू अनशन करें, तो भी मैं उसे कोई बड़ी बात नहीं मानूंगा। बहुत मुमकिन है कि इतनी बड़ी आहुति भी उस महायज्ञ के लिए काफी न हो। जब-जब मनुष्य पर धर्म-संकट आया, तब-तब उसने भगवान की आराधना अनशन-जैसे तप से ही की और इसीसे उसका धर्म-संकट दूर हुआ।"

तप की महिमा

गांधीजी को यह पक्का विश्वास था कि अस्पृश्यता-निवारण का सबसे बड़ा साधन एक तपस्या ही है। गांधीजी की दृष्टि में तप का अर्थ था पाप का नाश और पुण्य का संचय करने के लिए खुद अपनी इच्छा से बड़े-से-बड़े कष्ट को न सिर्फ सहन करना, बल्कि उसे इस तरह स्वीकार कर लेना कि वह महान् आनन्द-दायक है। गांधीजी का यह विश्वास था कि जिस किसी भी प्रवृत्ति की जड़ में तप का रस पैठ जाता है, उसके फूलों से प्रेम और मैत्री की सुगन्ध दूर-दूर तक फैलती है, और उसके फलों में अमृत-ही-अमृत भरा रहता है। तप में उपवास को गांधीजी ने बहुत बड़ा स्थान दिया था। उपवास या अनशन का अर्थ 'भूख-हड़ताल' न किया जाय, जो आयेदिन जहां-तहां सुनने और देखने में आती है। अनशन के संकल्प और पालन में गांधीजी परमेश्वर का प्रत्यक्ष हाथ देखते थे। उनके लिए अनशन योग की एक बड़ी ऊंची साधना थी। तप सत्याग्रह का अचूक अस्त्र

है। प्रेम के अमृत में डूबे हुए इस अस्त्र का उपयोग गांधीजी ने अनेक प्रसंगों पर अपने जीवन में १५ बार किया, और अपने अन्तर को और बाहर के वातावरण को भी निर्मल और स्वच्छ बनाया।

स्वच्छता

गांधीजी की दृष्टि में स्वच्छता और प्रामाणिकता में कोई अन्तर नहीं था। गांधीजी की किसी भी प्रवृत्ति को, चाहे वह रचनात्मक हो या फिर राजनैतिक, ध्यान से देखा जाय तो यह बात साफ नजर आयगी कि गंदगी को कभी उन्होंने सहन नहीं किया था। पल-पल पर अपनी खुद की मिसाल सामने रखकर हमेशा हर किसीको यही सलाह दी कि विकार को निकालकर निर्विकार बनो, निर्मल और स्वच्छ बनो, और जहां कहीं भी कूड़ा-कचरा पड़ा देखो उसे फौरन साफ करदो। गांधीजी के लिए सफाई-काम मानो एक यज्ञ था। आलस और लापरवाही को इसीलिए उन्होंने कभी अपने पास फटकने नहीं दिया, क्योंकि गन्दगी इन्हीं दो आदतों के अन्दर बड़ी चतुराई से अपना घर बना लेती है। हम गन्दगी करें और दूसरा कोई आकर उसे साफ करदे, इसे भी गांधीजी गन्दी आदत का ही एक प्रकार मानते थे। यही कारण है कि अपने आश्रमों के रोज़मर्रा के कार्यक्रम में उन्होंने पाखाना-सफाई को भी शामिल किया था। ज़रूरी माना जाता था कि आश्रमवासी सफाई का काम सीख लें और उसपर अमल करें। गांधीजी ने स्वयं आश्रम में झाड़ू लगाई और पखाना भी साफ़ किया था।

एक प्रसंग है, जो इस बात पर रोशनी डालता है कि गांधीजी को स्वच्छता कितनी अधिक प्रिय थी। प्रसंग रेल-गाड़ी की यात्रा का है। एक मुसाफिर ने, जो गांधीजी के पास

बैठा था, वहीं बैंच के नीचे थूक दिया। गन्ना चूस-चूसकर उसने छिलके भी वहीं फेंक दिये। गांधीजी ने उसे दलील और प्रेम से समझाया कि गाड़ी का डिब्बा गन्दा नहीं करना चाहिए, पर उसनें कोई ध्यान नहीं दिया। वह जिद्दी था। जान-जानकर बार-बार डिब्बे के फर्श पर उसने थूका और गांधीजी नें उस थूक को साफ भी बार-बार किया। दूसरे मुसाफिरों ने धिक्कारा, तब कहीं वह शर्मिदा हुआ और गांधीजी से उसने क्षमा भी मांगी।

हृदय को छूनेवाला एक प्रसंग गांधीजी की आत्मकथा में आया है। उससे प्रेरणा ली जा सकती है। प्रसंग वह दक्षिण अफ्रीका के डरबन शहर का हैं। गांधीजी के साथ उन दिनों घर में अछूत जाति का एक ईसाई क्लर्क रहने आया था। कमरे में मोरी नहीं थी। वहां पेशाब करने के लिए एक अलग बर्तन रख दिया गया था। उसे या तो गांधीजी स्वयं साफ़ करते या उनकी पत्नी कस्तूरबा। वह घर में नया-नया ही आया था। बा उसके पेशाब का बर्तन साफ़ करने में हिचकिचाईं। फिर भी शिकायत करती और लाल-लाल आँखों से आंसू टपकाती हुई बा ने वह बर्तन उठा लिया। इस तरह बेमन से पेशाव का बर्तन ले जाते देख गांधीजी को अच्छा नहीं लगा। बा को डांटा भी, यहां तक कह डाला कि "यह तो मेरे घर में नहीं चलेगा। तुम यहां से जा सकती हो।"

गांधीजी का यह भी विश्वास था कि रहन-सहन का आडम्बर सफ़ाई और सादगी के साथ मेल नहीं खाता। उनके बैठने और सोनें का स्थान बिल्कुल सादा रहता था, मगर साफ़-सुथरा और कलापूर्ण। लंगोटी पहनने में भी पूरी सुघड़ाई। वस्त्र स्वच्छ और बर्फ के जैसे सफेद। नित्य के उपयोग

का गिलास, कटोरा और चम्मच ऐसे साफ़ कि उनपर कहीं मैल या दाग का चिह्न भी नहीं। हाथ-मुँह धोने का उबाला हुआ पानी साफ़ बोतल में रहता था। किताबें, कागज़ और कलम सभी करीने से रखे हुए। कागज़ का कोई टुकड़ा कहीं पड़ा हो, तो उसे उठाकर रद्दी की टोकरी में खुद ही डाल देते थे। मतलब यह कि जहां गांधीजी का अन्तर अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल था, वहां बाहर का भी वातावरण साफ़-सुथरा, सादा और सुन्दर, देखते ही बनता था। जिस चीज को रखने का स्थान जहां नियत कर लिया, वहींपर उसे रखा जाता, ताकि अंधेरे में भी उसी जगह से उसे उठा लिया जाय। गांधीजी इस बात को नहीं मानते थे कि बाहर की सफ़ाई में क्या धरा है, साफ़ तो असल में इन्सान का दिल होना चाहिए। उनका विश्वास था कि जिसका अन्तर स्वच्छ है, वह बाहर की गन्दगी को, कूड़े-कचरे को, अस्त-व्यस्तता को कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। जो गन्दगी को सहन करता है और झूठी पवित्रता के आचार को, जैसे दस-दस बार मिट्टी और पानी से हाथ धोने को, महत्त्व देता है, मगर अपने ही जैसे इन्सानों से परहेज़ रखता है, अपने-आपको पवित्र मानकर उनको छूता भी नहीं; उनकी ऐसी स्वच्छता को गांधीजी सच्ची स्वच्छता नहीं मानते थे। गांधीजी ने अपने अन्तर को और बाहर के वातावरण को इतना अधिक स्वच्छ और निर्मल बना दिया था कि अपनी ज़िन्दगी की उजली चादर पर कहीं एक दाग़ भी नहीं लगने दिया था। कबीरदास के शब्दों में सचमुच उन्होंने सहज ही उतारकर, 'अपनी ज्यों-की-त्यों घर दीन्हीं चदरिया।'

वे कोई छोटे काम नहीं थे

देखकर ताज्जुब होता था कि यह आदमी, जिसने सारे देश का बोझा अपने सिर पर उठा रखा है, अपनी दिनचर्या को

किस खूबी और शान्ति के साथ निभा रहा है। अपने आहार-विहार पर किस तरह काबू कर रखा है ! हर काम का समय नियत, हर काम में चौकसपना। कहीं भी गफ़लत नहीं। लापरवाही का कहीं नाम नहीं। चिन्तन गहराई से चल रहा है। एक-एक पल प्रार्थना में डूबा हुआ। व्यवहार-कुशलता ग़ज़ब की। छोटों का भी ध्यान उतना ही, जितना की बड़ों का। सादगी में ही सदा सुन्दरता देखना। विरोधी को भी अपनी तरफ खींच लेने और मिट्टी को भी सोने में बदल देनें की अद्‌भुत कला। गांधीजी की ऐसी-ऐसी खूबियों पर जितना भी कहा जाय, थोड़ा है।

बड़े-बड़े सवालों पर ध्यान देना और उनका हल निकालना, इसीलिए गांधीजी से बनता था कि उन सवालों का भी उनको उतना ही ध्यान रहता था, जिनको कि हम छोटा मान वैठते है। गांधीजी मानते थे कि ज़रा-सी चिनगारी से सारा नगर भस्म हो जा सकता है। इसलिए छोटी बातों को कुछ कम महत्त्व नहीं देना चाहिए। एक प्रसंग याद आ रहा है। दिल्ली के हमारे हरिजन-निवास का प्रसंग है वह। वहां की उद्योगशाला के तीन विद्यार्थी साग-तरकारी छील और काट रहे थे। गांधीजी उन दिनों हरिजन-निवास में ठहरे हुए थे। विद्यार्थियों के पास से वह गुजरे और खड़े हो गये। एक लड़के के हाथ से चाकू लेकर सिखानें लगे कि तरकारी का छिलका इस तरह नहीं, इसे यों उतारा जाता है। तरीका गलत था। अपनी तरफ न उतारकर वह, बाहर को छिलका उतारकर फेंक रहा था। गांधीजी को एक ज़रूरी काम उसी समय करना था। "बापू, इस तरह तरकारी छीलना-काटना सिखानें से देर हो जायगी न, हमारा काम वह ज्यादा जरूरी है,।" महादेवभाई नें कहा।

"महादेव, यह भी तो एक महत्त्व का और ज़रूरी काम है। यह कोई छोटा काम नहीं है। यह बुनियादी काम है। ऐसे ही कामों की बुनियाद पर मजबूती से हम खड़े रह सकते हैं।" गांधीजी ने दृढ़ता के स्वर में जवाब दिया। लेकिन हमने तो उस काम को छोटा ही समझा था। गांधीजी की वह पैनी दृष्टि कहां हमारे पास थी ?

ऐसा ही एक और प्रसंग याद आ रहा है। पेंसिल का एक बहुत छोटा-सा टुकड़ा था, जिसे मुश्किल से पकड़कर चाकू से उसकी नोक निकालना भी कठिन हो रहा था। फिर भी गांधीजी उससे लिखते ही जा रहे थे, कई दिनों से। "बापू, अब तो छोड़िये इसे। इस ज़रा-से टुकड़े से आप कबतक लिखने का काम लेते रहेंगे ?" एक साथी नें हँसते हुए पूछा। "जबतक कि मेरी उंगलियां इस टुकड़े को पकड़े रह सकती हैं।"

जिस दिन गांधीजी का मौन होता, उस दिन भी मिलने-जुलनेवाले तो आते ही थे। वे अपनी-अपनी बात सुनाते, जिसे बड़े धीरज और ध्यान से गांधीजी सुनते थे। जब कोई सलाह देनें की बात आती तो किसी रद्दी कागज के टुकड़े पर उसे लिख देते थे। वह टुकड़ा होता था, या तो किसी चिट्ठी-पत्री का अनलिखा हिस्सा, या फिर किसी लिफाफे के अन्दर का भाग। ऐसे लिफाफों को भी गांधीजी सेंतकर रख लेते थे, जिनको उलटकर नये लिफाफे बन सकते थे। एक बार ऐसे डेढ़-दो सौ लिफाफे मुझे देते हुए कहा, "अपने विद्यार्थियों से, इनको उलटकर फिर से काम लेने के लिए, क्या तुम कुछ लिफाफे तैयार करा सकते हो ? तुम्हारे लड़कों की कारीगरी और कला की परीक्षा भी इससे हो जायगी।"

हमारे अन्दर बड़ी होशियारी से छिपा हुआ आलस और

प्रमाद या निकम्मापन ही किसी चीज की सच्ची कीमत नहीं आंकने देता और लापरवाही से उसे हम छोटी मान बैठते हैं।

एक बड़ा सुन्दर प्रसंग है, याद रखने लायक। वह एक बड़े कीमती पैसे का है। १९३४ की बात है यह, बिहार प्रांत की, जबकि भूकम्प ने वहां ताण्डव-नृत्य किया था। चम्पारन जिले के चइता घाटपर, गांधीजी की मार्मिक अपील पर, पचासों स्त्रियां अपने जेवर उतार-उतारकर संकट-निवारण-फण्ड में दे रही थीं। वहींपर खड़ी एक गरीब बुढ़िया हाथ जोड़कर किसीसे कह रही थी, "कुछ पैसे मुझे उधार दे दो न, गांधी महात्मा के चरणों पर चढ़ाने के लिए। तुम्हारे पैसे मजूरी करके कल ही चुका दूंगी।"

बेचारी को पैसा उधार मिल गया, पर सिर्फ एक ही पैसा। उसे देते हुए संकोच हो रहा था।

गांधीजी ने बुढ़िया के हाथ से पैसा ले लिया और कहा, "बूढ़ीमाई, तेरा दान यह कोई छोटा नहीं है। इसकी बहुत बड़ी कीमत है।"

और, उस एक पैसे को गांधीजी ने नीलाम पर चढ़ा दिया। उस पैसे की बोली ऊंची-से-ऊंची लगी।

गांधीजी की वह दृष्टि

जहां हम किसी चीज को या किसी घटना को ऊपर-ऊपर से देखते है, वहां गांधीजी उसे, उसके भीतर गहराई में उतर-कर देखते थे। हम अपनी अक्ल भिड़ाकर दलील से काम लेते हैं, पर गांधीजी का ध्यान एक ऐसे मनुष्य पर चला जाता था, जो भूख से तड़प रहा है, जिसके तन पर फटी लंगोटी के सिवा

और कुछ नहीं है, जिसकी आंखें धँसी हुई हैं और पेट जिसका पीठ से लग गया है। उसका ध्यान करते हुए गांधीजी तब अपने आपसे पूछते कि इस सवाल को हाथ में लेकर क्या हड्डियों के उस ढांचे में प्राण डाले जा सकते हैं, उसका कुछ भी भला किया जा सकता है ? अगर 'हां' में जवाब मिलता, तो वह सवाल तुरन्त हल हो जाता था। और अगर जवाब 'नहीं' में मिलता तो उसपर विचार करना छोड़ देते थे। गांधीजी की हरएक प्रवृत्ति की जड़ में इसी एक कसौटी को हम पाते हैं।

नर में ही नारायण को देखने का प्रयत्न गांधीजी का हमेशा रहा। उसीकी सेवा-साधना में जीवन का एक-एक पल उन्होंने लगा दिया था। उनका सत्य का हरएक प्रयोग इसीलिए प्रेम और करुणा के रस में डूबा हुआ रहता था। नर के रूप में नारायण की इसी उपासना और साधना ने गांधीजी को महात्मा बना दिया था। महात्मा तो और भी कितने ही दुनिया में हुए हैं और आगे भी होंगे। राजनेता भी अनेक हुए हैं और उनकी कभी कमी नहीं रहेगी। परन्तु गांधी, महात्मा और राजनेता के अलावा, पूरे अर्थों में मानव था—ऐसा मानव, जिसने छोटे और बड़े में कोई भेद नहीं किया, जिसका प्यार सभीने पाया और जो हमारे लिए बापू बन गया था, न रहा था गांधी और न रहा था महात्मा। या फिर यह मानव एक साथ ही संत-महात्मा था और लोक-नेता था और बापू भी था।

गांधीजी के दो हाथों ने अनेक हाथों का काम एक साथ ही किया और अपनी दो आंखों से अनेक आंखों का काम लिया। ध्यान में कुछ भी छूटा नहीं। किसीको सलाह दी तो उसके सच्चे हित का चिन्तन गहराई से करने के बाद।

किसीको रास्ता दिखाया तो पहले उसपर खुद चलकर।

किसीको उपदेश नहीं दिया, अपने खुद के अनुभवों को ही बताया। कभी आसमानी उड़ान नहीं भरी। धरती ही की धूल को छाना और उसीमें से अनमोल रतन खोजने का जतन किया और कामयाबी भी मिली। सो, मानना पड़ता है कि कमाल का इन्सान था गांधी। किससे क्या कितना काम लिया जा सकता है, इसका अन्दाजा लगाने में गांधीजी को देर नहीं लगती थी। हरएक की योग्यता, उसकी शक्ति और उसका स्वभाव देख-परखकर उसे वैसा ही काम दिया जाता था। अनुभव आने पर कभी-कभी उसके काम को गांधीजी बदल भी देते थे। उसके काम पर पूरी चौकसी रखते थे। ऊपर से सख्ती भी दिखाते थे, पर अन्दर उसके लिए प्रेम ही होता था। तभी एक खासी बड़ी संख्या में हरएक क्षेत्र के लिए परखे हुए कार्य-कर्त्ता खोज निकालने, पैदा करने और उनको तैयार करने की सचमुच अद्भुत कला थी गांधीजी में।

सभीने वहां पाया

जो कोई भी गांधीजी के द्वार पर पहुंचा, वह खाली हाथ नहीं लौटा। कुछ-न-कुछ उसने पाया ही। लोक-सेवा करने की इच्छा रखनेवालों ने तो सचमुच बहुत-कुछ पाया जैसे—

शिक्षा में दिलचस्पी लेनेवाले को सलाह दी, "बुनियादी तालीम का प्रयोग करो, क्योंकि यह तालीम बालक के मन और शरीर दोनों का एकसाथ विकास करती है। वह तालीम किस काम की, जो मां-बाप के सिर का बोझ बन जाय? शहर और गांव के बीच जो भयानक खाई बन गई है, उसे बुनियादी तालीम ही पाट सकती है। शिक्षा की यह पद्धति हिन्दुस्तान जैसे देश की आबोहवा के लिए तो ज्यादा अनुकूल और लाभ-दायक है। इसके अन्दर गहरे उतरकर जरा देखो तो।"

कोई विद्यार्थी पहुंचा तो उसका हौसला बढ़ाया, यह कहकर कि, "तुम तो देश के भविष्य की आशा हो। तुम्हींमें से तो राष्ट्र के भावी नेता तैयार होनेवाले हैं। समाज तुम्हारे ऊपर जो खर्च कर रहा है वह सब उसे एक दिन लौटा देना है। विद्यार्थी-जीवन में आराम कहां? विलास कहां? तुम्हारा रहन-सहन सादा और व्यवहार सच्चा होना चाहिए। तुम्हें राजनीति पढ़नी तो चाहिए, पर किसी दलबन्दीवाली राजनीति में कभी शामिल नहीं होना चाहिए। राजनैतिक हड़तालें नहीं करनी चाहिए। गुरुजनों और नेताओं के अच्छे कामों का ही अनुसरण करो।"

रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करनेवाले से कहा, "तुम तो अब कोढ़ियों की सेवा में अपने-आपको लगा दो, तन से, मन से और धन से। कोढ़ी की हमने आजतक उपेक्षा ही की है। उसे घर से निकाल दिया जाता है और वह दर-दर भीख मांगता फिरता है। सभी उससे घृणा करते हैं। उसे प्रेम से अपनाना है, उसकी सार-संभाल करनी है, सबसे ज्यादा। कोढ़ी की सेवा प्रभु की सबसे बड़ी सेवा है।"

अपनी बात गांवों में रहनेवाले लाखों लोगों को हम किस भाषा में और कैसे समझाएँ, यह समस्या लेकर अगर कोई आया तो उसे यही सलाह दी कि, "जिस प्रान्त में जो भाषा या बोली हो, उसीमें वहां अपनी बात कहो। हिन्दी या हिन्दुस्तानी को तो हमारे देश के ज्यादातर लोग समझते ही हैं, बाकी के लोग उसे जल्दी ही सीख सकते हैं, इसलिए हमारे राष्ट्र की भाषा वही हो सकती है। अंग्रेजी में बात करोगे, तो उसे कितने लोग समझेंगे? अंग्रेजी का यह मोह जबतक हमारे दिल से नहीं हटेगा, तबतक हमारी अपनी भाषाएँ कंगाल ही रहेंगी।"

नशाबन्दी का सवाल लेकर कोई कार्यकर्त्ता पहुंचा तो उसका उत्साह बढ़ाते हुए कहा, "मैं तो भारत का कंगाल हो जाना पसन्द करूंगा, लेकिन कभी यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि हमारे हजारों लोग शराब के नशे में डूबे रहें। भारत में शराबबन्दी जारी करने के लिए अगर शिक्षा देना भी बन्द करना पड़े, तो कोई परवा नहीं। मैं यह कीमत चुकाकर भी शराबखोरी को बन्द करूंगा। अफीम, शराब जैसी चीजों के बुरे व्यसन में फंसे हुए अपने करोड़ों भाई-बहनों के भविष्य को सरकार की मेहरबानी या मर्जी पर लटकता हुआ मैं छोड़ नहीं सकता। शराबखोरी को मैं चोरी और वेश्या-गमन से भी ज्यादा निन्दनीय मानता हूं। यह शराबखोरी ही तो इन दोनों बुराइयों को जन्म देती है।"

सफाई-कार्यकर्त्ता का उत्साह सौ गुना बढ़ गया, जब उसे बताया कि, "ईश्वर-परायणता के बाद दूसरा स्थान अगर कोई हो सकता है तो वह सफाई का है। गन्दे दिमाग और मैली देह से प्रभु का आशीर्वाद नहीं पाया जा सकता। आज तो हमारे देश में सुहावने छोटे-छोटे गांव गन्दे देखने में आते हैं। उनको सफाई के नमूने बनाना होगा। गन्दगी को जड़मूल से मिटा देना हमें अपना फर्ज समझना होगा।"

आर्थिक समानता किस तरह हो सकती है, अहिंसा के रास्ते से या कि साम्यवाद के तरीके से, यह प्रश्न कोई पूछने गया तो उसे यही जवाब मिला कि, "आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है, पूंजी और मजदूरी के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए खत्म कर देना। पूंजी अपने-आप में बुरी नहीं है, अगर समाज के लिए उसका अच्छा उपयोग किया जाय। धनवानों को मेरी यह सलाह है कि वे अपनी जायदाद के ट्रस्टी बन जायं।"

किसी ने उपवास या अनशन करने का अर्थ पूछा तो उसे बताया गया कि, "ईश्वर में सजीव श्रद्धा के बिना उपवास करने का कोई मतलब ही नहीं। वह तो महज भूखों मरना हुआ। उपवास असल में हमारी आत्मा की गहराई में से आना चाहिए।"

ऊपर से अहिंसा की बात करनेवाले बुजदिल को फटकारते हुए कहा कि, "जहां कायरता और हिंसा के बीच चुनाव करने की बात हो, वहाँ मैं हिंसा के पक्ष में अपनी राय दूंगा।"

श्रद्धा-भक्ति के आंसू बहाती, हुई, नारी, ने जिसे अबला बना दिया गया था, कृतज्ञता प्रगट की तब उससे कहा, "बहन, तू अपनी शक्ति को पहचान, क्योंकि वासना की राख से तुझे ढक दिया गया था।"

साम्प्रदायिक एकता में दिलचस्पी रखनेवाले कार्यकर्त्ता से कहा, "ऐसी एकता का मतलब महज सियासी एकता नहीं है। सच्चे अर्थ में वह ऐसी दिली दोस्ती है, जो तोड़े न टूटे।"

रचनात्मक कामों में सरकारी मदद ली जाय या नहीं यह सवाल जब पूछा गया, तो जवाब मिला, "सरकार की मदद लेने में न तो धर्म का पालन होता है और न कोई पुरुषार्थ बनता है।"

किन्तु सावधान !

मतलब यह कि जो भी पहुंचा, कुछ पूछने या सलाह लेने, उसे गांधीजी ने कभी निराश नहीं किया। कार्यकर्त्ताओं को, आश्रमवासियों को, मित्रों को और विरोधियों को भी हजारों की संख्या में पत्र लिखें, और सैकड़ों ही लेख दक्षिण अफ्रीका से प्रकाशित 'इंडियन ओपिनियन' में तथा 'यंग इंडिया', 'नव-

जीवन', 'हरिजन', 'हरिजन बन्धु' और 'हरिजन-सेवक', इन साप्ताहिक पत्रों में अनेक विषयों पर लिखे। पत्रों में और लेखों में जो लिखा उसका एक-एक शब्द नपा-तुला और सार से भरा हुआ होता था। तो भी यह आग्रह नहीं रखा था कि जो कहा या लिखा गया है, उसे आँख मूँदकर मान ही लिया जाय। गांधीजी का स्पष्ट मत था, "मैं जो कुछ कहूँ वह अगर वजनदार लगे तो नोट करने के बजाय उसे पचाकर जीवन में उतार लेना चाहिए। अपनी आँखों से आप जो देखें सो करें, मेरे कहने से नहीं। बीस महात्मा कहें तो भी नहीं। तजुर्बे से, और गलती करके आप सीखेंगे।" गांधीजी को यह भय था कि आगे चलकर लोग उनके लेखों में से अपने-अपने मतलब की बात निकाल सकते हैं बतौर प्रमाणों के। इसीलिए एक बार तो यहांतक गांधीजी नें कहा था कि 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' की फाइलें मेरी चिता पर रख देना। मतलब यह था कि गांधीजी की तरह हम सभी अपने जीवन में स्वयं ही सत्य को देखें और उसके प्रयोग करें। यह बहुत बड़ी बात थी। भगवान् बुद्ध ने भी भिक्षुओं से ऐसा ही कहा था, "जैसे बुद्धिमान लोग सोने को तपाकर, काटकर, कसौटीपर कसकर परखते हैं और उसे फिर ग्रहण करते हैं, वैसे ही तुम मेरे बचनों को परखकर ग्रहण करो, न कि निरी श्रद्धाभक्ति से।"

परन्तु हम तो अक्षरों से ही चिपट बैठने के आदी हो गये हैं। यह सोचने और समझने का जतन हम नहीं करते कि अमुक महापुरुष ने किस मौके पर, किस प्रसंग में किस जगह, किस परिस्थिति में, किससे क्या कहा था। सारे संदर्भ पर उचित और आवश्यक ध्यान देकर उसमें के केवल उतने ही अंश को अपना अर्थ बिठाने के लिए हम पकड़ लेते हैं, और मान लेते हैं

कि हम जो कहते हैं, वह उससे साबित हो जाता है और हम अन्याय कर बैठते हैं, उस महापुरुष के साथ और अपने साथ भी। स्वतन्त्र रीति से और संतुलित दृष्टि से अगर हम सोचें और समझें तो ऐसा करना उन महापुरुषों का सच्चे अर्थ में कहीं अधिक सम्मान कहा जायगा ।

कुछ वे वचन

गांधीजी के अपार और अथाह विचार-सागर में से कुछ बिखरे हुए वचनों को मैं इसलिए यहाँ रख रहा हूं कि इनपर गहराई से विचार किया जाय, ताकि सत्य और प्रेम के मार्ग पर चलने में इनसे सहारा मिले :

"भारी-से-भारी ताकत इन्सान को नीचे नहीं गिरा सकती। इन्सान को गिरानेवाला तो इन्सान खुद ही है।

"बहादुर लोग जिनपर दुश्मनी का शक होता है, उनपर भी विश्वास रखते हैं।

"जो सचमुच भीतर से स्वच्छ है, वह बाहर से अस्वच्छ हो ही नहीं सकता।

"मिथ्या ज्ञान से हम हमेशा डरते रहें मिथ्या ज्ञान वह है, जो हमको सत्य से दूर कर देता है।

"सच्चा सुख बाहर से नहीं मिलता है, अंतर से ही मिलता है।

"हम दूसरों को दोष दें और खुद को निर्दोष बतायें, यह बड़ो खतरनाक बात है।

"मनुष्य एक क्रांति है। मनुष्य के विकास के लिए जीवन जितनी ही मृत्यु आवश्यक है।

"सीधा रास्ता जैसा सरल है, ऐसा ही कठिन है। ऐसा न

होता तो सब सीधा ही रास्ता लेते।

"थोड़ा-सा झूठ भी मनुष्य का नाश करता है, जैस दूध को एक बूंद भी जहर।

"मनुष्य-मात्र का विश्वास रखना हमारा कर्त्तव्य है। हम भी तो दूसरे की आशा रखते हैं। अगर ईश्वर हमें लालच में डालता है तो उसमें से बच जाने का रास्ता भी वही बताता है।

"जैसे बिन्दु का समुदाय समुद्र है, इसी तरह हम मैत्री करके मैत्री का सागर बन सकते हैं और जगत में सब एक-दूसरों से मित्रभाव से रहें तो जगत का रूप ही बदल जाय।

"हम भले ही ईश्वर को न जानें, उसकी सृष्टि को तो जानते हैं। सृष्टि की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।

"ऊँच-नीच का विचार एक बुराई है, पर उसे संगीन की नोक से दूर करने में मेरा विश्वास नहीं है।

"व्याधियाँ अनेक हैं, वैद्य अनेक हैं, उपचार भी अनेक हैं। अगर व्याधि को एक ही देखें और उसको मिटानेहारा वैद्य एक राम ही है, ऐसा समझें, तो बहुत-सी झंझटों से हम बच जायं।

"आश्चर्य है वैद्य मरते हैं, डाक्टर मरते हैं, उनके पीछे हम भटकते हैं। लेकिन राम, जो मरता नहीं, हमेशा जिन्दा है और अचूक वैद्य है, उसे हम भूल जाते हैं!

"मौनं सर्वोत्तम भाषण है। अगर बोलना ही चाहिए तो कम-से-कम बोलो। एक शब्द से चले तो दो नहीं।

"ईश्वर प्रकाश है, अन्धकार, नहीं, 'वह प्रेम है, घृणा नहीं,' वह सत्य है, असत्य नहीं।

"धर्महीन राजनीति को एक फांसी ही समझिये। वह आत्मा का नाश कर देती है।

"मनुष्य की शान्ति की कसौटी समाज में ही हो सकती है, हिमालय की चोटी पर नहीं।

"जमीन का मालिक तो वही है, जो उसपर मेहनत करता है। किसीकी मेहरबानी मांगना अपनी आजादी बेचना है।

"वह धर्म, जो व्यावहारिक मामलों पर ध्यान नहीं देता और सुलझाने में सहायक नहीं, धर्म ही नहीं है।

"दया और अहिंसा अलग चीजें नहीं हैं। दया अहिंसा की विरोधी नहीं। विरोधी हो तो वह दया नहीं।

"मनुष्य-जीवन और पशु-जीवन में फर्क क्या है? इसका सम्पूर्ण विचार करने से हमारी काफी मुसीबतें हल होती हैं।

"जहां वाणी और मन में एकता नहीं, वहां वाणी केवल मिथ्यात्व है, दंभ है, शब्दजाल है।

"अच्छी बात के लिए साधन भी अच्छे ही बरतने चाहिए। टेढ़े रास्ते से सीधी बात तक नहीं पहुँचा जा सकता।

"अहिंसा के मार्फत स्वतन्त्रता पाने का एक ही मार्ग है—मरकर जीते हैं, मारकर कभी नहीं।

"सदा अमृत पीनेवाले को वह उतना मीठा नहीं लगता, जितना जहर का प्याला पीने के बाद अमृत की दो बूंदें।

"वह राष्ट्र महान् है, जो मृत्यु के तकिये पर सिर रखकर सोता है।

"जो इन्सान को सदाचार में एक कदम आगे बढ़ाये और उसके आदर्श ऊंचे बनाये, वह कला है।

"देह को तो एक दिन छोड़ना ही है, लेकिन दुखियों के निमित्त छूटे, उसके बराबर शुभ और क्या हो सकता है?

"दरिद्र वह है, जिसमें शुद्ध प्रेम की बूँद तक नहीं। धनवान वह है, जिसके प्रेम में जन्तु से लेकर हाथी तक समा सकता है।

"हुकूमत का क्षेत्र छोटा रहता है, लेकिन सेवा का क्षेत्र तो बहुत बड़ा रहता है।

"आत्मरक्षा प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकारी है। मैं हिन्दुस्तान में एक भी नामर्द नहीं देखना चाहता।

"सेवा का भी मोह हो सकता है। मोहमात्र छोड़ने से ही सच्ची सेवा हो सकती है।

"हमें तो इतना देखना चाहिए कि हम जो कर रहे हैं वह शुद्ध है या नहीं। जो बो रहे हैं वह प्रेम है या और कुछ।"

ये जो चन्द वचन गांधीजी के लेखों और पोथियों और उनके भाषणों से लिये गए हैं, ऐसे नहीं है, जो पहले न कहे गये हों। हमारे देश के ही नहीं, दुनिया के दूसरे देशों के प्राचीन महापुरुषों ने अपनी-अपनी बोली में और अपने-अपने ढंग से ऐसे ही वचनों को कहा था। गांधीजी ने अपने अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर परम्परा से चले आये विचारों को एक नया रूप दिया है। जोर गांधी का इस बात पर रहा कि मेरे कथनों को संतुलित बुद्धि की कसौटी पर कसा जाय और यह भली-भांति देख लिया जाय कि जो कहा है, उसका मेल स्थान, समय और परिस्थिति के साथ कहां तक बैठता है। पर ऐसा करनें में काफी सावधानी बरतनी होगी। वह धर्म-कांटा तलाशना होगा कि जिसपर उन वचनों या कथनों को हम तोलना चाहते हैं, और यह भी कि उस तराजू को जब पकड़ें तो हाथ तनिक भी न हिले-डुले। साथ-ही-साथ यह भी देखना होगा कि ऐसे वचनों की परख हम आखिर किस मतलब से कर रहे हैं। अगर

उन वचनों और कथनों को इस विचार से तोलते और परखते हैं कि जो सच्चाई सामने आयेगी, उसपर अमल करेंगे, तभी बात बनती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बापू के प्रेम का झरना निरन्तर झरता रहा—

सबके सुख के लिए, और सबके हित के लिए।
घाट सभी के लिए खुला हुआ था उस झरने का।
कोई भी जाकर प्यास बुझा सकता था वहां,
और अपना जीवन-घट भी भर सकता था भरपूर

पर यह देखना तो घट भरनेवालों का काम था कि घट में कहीं छेद तो नहीं है। मतलब यह कि गांधी के या किसी भी महापुरुष के अमृत-रस को हम लेने जायं, तब अच्छी तरह देख-परख लें कि हमारे जीवन-घट में कहीं कोई छेद तो नहीं है और अन्दर और बाहर से वह खूब स्वच्छ है या नहीं ?

गांधीजी के सपने

अक्सर पूछा जाता है कि गांधीजी के सपने कहां तक सफल या पूरे हुए। पूछनेवाला खुद अपने आपसे क्यों न इस सवाल को पूछे ? पर कभी तो यह प्रश्न केवल पूछने के लिए पूछा जाता है, और कभी खुद बचकर दूसरों का दोष निकालनें के लिए, ज्यादातर सरकार को एकमात्र दोषी ठहराने के लिए। मान लिया गया है कि गांधी के सारे ही सपने हमारी सरकार को ही सफल बनाने चाहिए। पर अमल में बहुत-से सपने गांधी के ऐसे थे, जो जनता के अपने खुद के संकल्प और साधनों से पूरे हो सकते हैं, न कि राज-सत्ता के द्वारा। मगर सरकार भी अपने आपको चंद जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं कर सकती।

प्रश्न किसी भी नीयत से पूछा गया हो, उत्तर की अपेक्षा तो वह रखता ही है। इस प्रश्न के उत्तर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। एक तो यह कि गांधी का एक भी सपना ठीक तरह से साकार नहीं हुआ। दूसरा यह कि जनता की बनाई हुई सरकार अगर ईमानदारी से चाहे तो गांधी के कितने ही सपनों को वह पूरा कर सकती है। तीसरा यह कि कुछ सपने गांधी के ऐसे थे, जिनको व्यावहारिक नहीं कहा जा सकता, इसलिए उनको सफल बनाने के लिए प्रयत्न करना बेकार है। हममें से जिन लोगों का गांधीजी के इस या उस कार्यक्रम में कतई विश्वास नहीं हैं और इस बात को जो साफ-साफ कह देते हैं, वे न तो अपने-आपको धोखा देते हैं और न दूसरों को। उनकी बात साफ समझ में आ जाती है। मगर हममें से जो लोग दिल से गांधीजी के बताये किसी भी कार्यक्रम में विश्वास नहीं रखते, पर ऊपर से विश्वास रखने का दिखावा और दावा करते हैं, उनको तो गांधीजी के सपनों का निर्दयतापूर्वक भंग करनेवाला ही कहा जायगा।

सपना अक्सर कवि की कल्पना कहा जाता है। माना जाता है कि उसके पैर धरती पर नहीं हुआ करते, या फिर पैर होते ही नहीं। कल्पना तो आसमान में उड़ान भरती है। सपने को मिथ्या तो मानते ही हैं। उसमें रंक बन जाता है राजा, और राजा हो जाता है रंक। पर गांधी-जैसे महापुरुषों के सपने को कोरी कल्पना नहीं कहा जा सकता। उनके सपने प्रत्यक्ष अनुभव के ताने-बाने से बुने हुए होते हैं। वे बहुत आगे की बात सोचते और देखते हैं। उनका विश्वास होता है कि कभी-न-कभी और कहीं-न-कहीं उनका सपना दुनिया के किसी भी हिस्से में साकार होकर रहेगा। मगर सवाल तो आज का है,

और हमारे सामने के भारत का है कि गांधीजी ने जो सपने देखे थे, उन उनमें से कितने और कहां तक साकार हो पाये हैं।

आज तो ऐसा कुछ देखने में नहीं आ रहा, जिसके आधार पर कहा जा सके कि गांधी के सपने साकार हुए या होने जा रहे हैं। गांधी ने जो-जो सिखाया था, जो करने को कहा था, वह सारा-का-सारा राज्य के भरोसे पर छोड़ दिया गया है और अपनी जिम्मेदारियों से हमने बड़ी आसानी से छुटकारा पा लिया है। मान लिया गया है कि राज्य का सहारा मिलने से गांधी के अधूरे छोड़े हुए काम सारे देश में फैल रहे हैं और बढ़ते जा रहे हैं, जबकि असल में उनका स्वरूप ही बदल गया है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि उन प्रवृत्तियों के फेफड़ों में बाहर से जो हवा पहुँचाई जा रही है, वह उनको बहुत दिनों तक जिन्दा नहीं रख सकेगी। यह कहा जा सकता है, जो बहुत-कुछ-सही भी है, कि किसी भी प्रवृत्ति या रचनात्मक काम का रूप सदा एक-सा नहीं रहता है। समय के अनुसार उसे बदलने, घटाने और बढ़ाने की गुंजाइश रहती है, किन्तु उसकी जड़ों को नहीं काटा जा सकता। सच्चाई, ईमानदारी, स्वच्छता, व्यवहार-शुद्धि और प्रेम का बर्ताव अगर यह सबकुछ नहीं रहा तो मानना होगा कि गांधी छापवाले रचनात्मक कार्यों में से प्राण-वायु निकल गई। दुर्भाग्य से ऐसा-ही कुछ देखने में आ रहा है।

सच्चाई जैसे दिन-ब-दिन आंखों से ओझल होती जा रही है। असत्य के साथ खाहमखाह हम झगड़ा मोल नहीं लेना चाहते। उसके साथ रोजमर्रा 'समझौता' करते चले जा रहे हैं।

प्रेम व मोहब्बत की बात तो हम बहुत करते हैं, पर बैर का ज़हर बड़ी चतुराई से अपने दामन में लिये और छिपाये बैठे हैं। अहिंसा आज बहुत करके बुज़दिल का हथियार बन गई है।

खादी को ही लें। उन लोगों की बात समझ में आ सकती है, जो मानते हैं कि खादी आज के आर्थिक ढांचे में बैठ नहीं सकती। लेकिन हममें से जो खादी के हक में बोलते हैं और उसके लिए काम करते हैं, वे कहां तक गांधी का सपना साकार कर रहे हैं ?

और बुनियादी तालीम ? इस नाम के यों हजारों प्राइमरी स्कूल देखने में आते हैं, पर क्या असल में वे बुनियादी तालीम का मखौल नहीं कर रहे हैं ? मगर राज्य की सहायता पर उसे किसी तरह ज़िन्दा रखा जा रहा है, जबकि गांधीजी ने यहां तक कहा था कि स्वतंत्र भारत में भी शिक्षा को सरकार पर निर्भर नहीं रखना होगा।

छूआछूत दूर करने और पिछड़ी जातियों को ऊपर उठाने का काम भी प्रायश्चित्त की भावना से आज कहाँ हो रहा है ?

शराबबन्दी का जो सपना गांधीजी ने देखा था वह बुरी तरह भंग हो रहा है। यह बड़ा प्यारा सपना था गांधीजी का।

गांधीजी के जाते ही, और उनके आखिरी दिनों में, उनके सामने ही, हमने अपना बाहर का और भीतर का भी भेष बदल लिया। परवा नहीं की कि सच्चाई इससे धुंधली पड़ जायगी, और मोहब्बत और नेकी को करारा धक्का लगेगा। प्रेम की ताकत को हमने भुला दिया। साहस का साथ छोड़ दिया। बनावट को गले लगा लिया, जिससे मादकता झूम उठी।

गांधी ने जो कुछ सिखाया था, जो कुछ बताया था, वह जैसे भुलाया जा रहा है, जो-जो उसने रचा था, वह जैसे मिटाया जा रहा है।

विश्वास पर सन्देह ने काबू पा लिया है। एक-दूसरे को हम पहचान भी नहीं पा रहे हैं। अपनी भाषा को भी भूलते

जा रहे हैं। त्याग और तप पर हम हँसते हैं। अपनी मूल प्रकृति भी याद नहीं आ रही है।

कभी-कभी अपने दिल को टटोलते हैं तो यह मानकर संतोष कर लेते हैं कि महात्मा के मार्ग पर तो कोई महात्मा ही चल सकता है, हमारे जैसे दुनिया के अल्पात्मा नहीं। गांधी तो एक अलौकिक पुरुष था, इसीलिए वह सत्य ही सोचता था, सत्य ही बोलता था और सत्य ही किया करता था। हम उसके नाचीज पुजारी भला उसकी बराबरी कैसे कर सकते हैं? वह तो पूजनीय है और केवल पूजनीय है। उसके चरण-चिह्नों पर चलने की हिमाकत हम कर नहीं सकते।

यह भी कह सकते हैं कि वह अध्याय ही समाप्त हो गया है, जिसका निर्माण गांधी से हुआ था। जिस युग में हम रह रहे हैं, उसमें वह अध्याय आज ठीक-ठीक बैठता ही नहीं है। यों भी कह सकते हैं कि सच्चाई और प्रेम का रास्ता उस ठौर पर नहीं पहुंचा सकता, जहां कि हम आसानी से और बहुत जल्दी पहुंचना चाहते हैं। हो सकता है कि वह ठौर या जगह ऐसी हो कि जिस पर न तो पैर टिक सकें या दलदल में धँस जायँ और आँखों को वहाँ कुछ भी न दिखाई दे और दम घुटने लग जाय। तब हमें लौटकर उसी रास्ते पर आना होगा, जो आज बहुत लम्बा और गांधी के सपनों का बना मालूम होता है। हमारा विश्वास है कि जीत अन्त में आत्मबल की ही होगी। निराशा के काले-काले बादल तब तितर-बितर हो जायंगे और प्रकाश की किरणें सच्चाई, प्रेम और नेकी का रास्ता पकड़ा देंगी। उसे हम गांधी-मार्ग कहें या कोई भी नाम दें उसे, फर्क नहीं पड़ता। कहते हैं, रास्ता वह बड़ा लम्बा है और थका दे सकता है। लेकिन हकीकत ऐसी नहीं है। रास्ता

वह बहुत छोटा है। एक घड़ी भी उसपर चला जाय तो वह उस मंज़िल पर पहुंचा देता है, जिसे काले कोसों का मान लिया गया है। सारा चलने-वाले पर निर्भर करता है। बहस करते रहेंगे, शंका-पर-शंका उपजाते रहेंगे तो रास्ता लम्बा और लम्बा होता जायगा। और, दृढ़ता से नपा-तुला सही कदम रखा, तो मंजिल वह एकदम पास है, जहां हम पहुंचना चाहते हैं। गांधी का दिखाया रास्ता असल में न तो लम्बा है और न ऊबड़-खाबड़ है। वह हममें से हरएक का बहुत पहले से जाना-पहचाना रास्ता है। उसी मार्ग पर निर्भय होकर, आशा का मंगलदीप हाथ में लेकर, हम चलें। यही गांधी महात्मा का सच्चा जय-जयकार होगा।

●

'मंडल' द्वारा प्रकाशित
गांधी विचार-साहित्य

१. गांधी : वैष्णवजन
२. गांधीजी को श्रद्धांजलि
३. भूदान-यज्ञ
४. राजघाट की संनिधि में
५. गांधीजी की देन
६. गांधी-विचार दोहन
७. अहिंसा की कहानी
८. अस्पृश्यता
९. आज के सवाल : गांधी के जवाब
१०. गांधीजी और गो-सेवा

एक रुपया